भारत के
संकटग्रस्त वन्य प्राणी
और उनका संरक्षण

लोकोपयोगी विज्ञान

भारत के संकटग्रस्त वन्य प्राणी और उनका संरक्षण

एस. एम. नायर

अनुवाद
हरी चरण अग्रवाल



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आवरण चित्र : नीलगिरि टाहर : मुकेश बराड़ द्वारा चित्रित।

चित्रांकन आभार : मुकेश पंचाल, मुकेश बराड़, डी. एम. थुम्बर, मुकेश आचार्य, शैलेश भालानी–सेंटर फार एन्वायरनमेंट एजूकेशन, अहमदाबाद।

रंगीन चित्र : राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, दिल्ली से साभार।

छायाचित्र आभार : ई. हनुमंत राव, कैलाश सांखला, ए.जे.टी. जॉनसिंह, मनोज ढोलकिया, राजश्री साराभाई, आर. के. गौड़, डा. वेंकट, जगदीप राजपूत, के. जे. चुग, खालिद घनी।

ISBN 81-237-1290-1

पहला संस्करण : 1995 (शक 1917)

Endangered Animals of India and their conservation *(Hindi)*

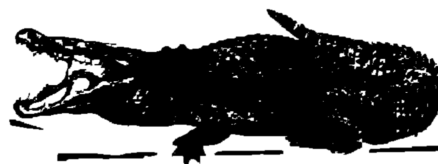
रु. 26.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली–110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची





प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत के संकटग्रस्त वन्य प्राणी और उनका संरक्षण' जनसाधारण में दुर्लभ और संकटग्रस्त वन्य प्राणियों के प्रति जागरूकता बढ़ाने तथा इनके संरक्षण की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करने के प्रयोजन से लिखी गयी है। इस जानकारी को लोकप्रिय शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं प्राणिवैज्ञानिक विवरण टाला नहीं जा सका है, विशेष रूप से अध्याय 3 में, जो संकटग्रस्त प्राणियों की जातियों से संबंधित है। फिर भी, इस अध्याय में प्राणियों के सामान्य लक्षण ही दिये गये हैं जो प्राणियों की पहचान में उपयोग के लिए नहीं हैं।

वन्य जीवन संरक्षण के संबंध में बढ़ती हुई जागरूकता तथा पेड़-पौधों, प्राणियों और पारिस्थितिक तंत्रों को बचाने के लिए प्रकृति संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, संकटग्रस्त प्राणियों के संरक्षण के लिए विशेष परियोजनाएं प्रारंभ करने तथा कानून बनाने और संस्थाओं की स्थापना करने जैसे सरकारी प्रयासों के बावजूद जनसाधारण में वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति जागरूकता एवं जनचेतना बढ़ाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। आशा है कि इस संदर्भ में इस पुस्तक में दी गयी जानकारी लाभप्रद सिद्ध होगी।

नयी दिल्ली स्थित राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय (एन.एम.एन.एच.) व इसके संरक्षण शिक्षा संबंधी कार्यकलापों और इस कार्य हेतु संग्रहालय में संसाधनों के विकास में मेरी भागीदारी इस कार्य में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। मैं इस संग्रहालय के श्री वी. जी. गोगटे का आभारी हूं जिन्होंने एक अनुभवी

प्रकृति वैज्ञानिक होने के नाते संकटग्रस्त वन्य प्राणियों के विषय में मुझे उपयोगी जानकारी प्रदान की। पर्यावरण शिक्षा केंद्र–सेंटर फार एन्वायरनमेंट एजूकेशन (सी.ई.ई.), अहमदाबाद में कार्यरत श्री ई. के. नरेश्वर ने पांडुलिपि को पढ़कर और महत्वपूर्ण सुझाव देकर अपना सहयोग दिया है। मैं नेशनल बुक ट्रस्ट में सेवारत सुश्री मंजु गुप्ता का भी आभारी हूं, जिन्होंने पांडुलिपि में वांछित संपादकीय संशोधन किये।

चित्रों के लिए मैं सी.ई.ई., अहमदाबाद के 'डिजाइन एंड ग्राफिक्स' विभाग में कार्यरत श्री धुन करकरिया और उनके सहयोगियों का विशेष आभारी हूं। पुस्तक में प्रकाशित छायाचित्र राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय के वन्य जीवन स्लाइड संग्रह में से तैयार किये गये हैं जो भारत के विख्यात प्रकृति वैज्ञानिकों व फोटोग्राफरों के सहयोग से बन सका। मुझे अपनी पत्नी लीला तथा पुत्रियों मीना व दिव्या से इस पुस्तक को लिखने में जो प्रोत्साहन और सहयोग मिला, उसी के कारण यह कार्य पूरा हो सका।

नयी दिल्ली
अक्तूबर 1992

–एस.एम.नायर



वन्य प्राणियों की विरासत

एक ऐसे संसार की कल्पना करें जिसमें हमारे परिवेश की शोभा बढ़ाने वाला कोई जानवर न हो—न कुत्ता, न बिल्ली, न मवेशी, न पक्षी और न तितलियां। न ही हिरण, तेंदुआ, चीता आदि वन्य प्राणी। क्या आप समझते हैं कि हम निपट अकेले ही जी सकते थे ? नहीं, क्योंकि पृथ्वी पर संपूर्ण जीवन किसी न किसी रूप में परस्पर संबंधित और जुड़ा हुआ है। सभी जीव अपने भौतिक वातावरण अर्थात् भूमि, जल और वायु पर निर्भर हैं। पौधों, प्राणियों और वातावरण के परस्पर संबंध का अध्ययन पारिस्थितिकी (ईकोलाजी) कहलाता है। पौधों और प्राणी, प्राणी और प्राणी तथा पौधों, प्राणी और मनुष्यों के आपसी संबंधों को समझने में हमें इनकी भोजन की आवश्यकताओं से मदद मिलती है। यह पारिस्थितिकी का एक मूलभूत पहलू है।

हम सभी जानते हैं, मूल रूप से हरे पौधे भोजन बनाते हैं। ये सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का प्रयोग करके कार्बन डाईआक्साइड और जल की सहायता से 'प्रकाश संश्लेषण' की प्रक्रिया के दौरान साधारण कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। शाकाहारी प्राणी इन पौधों को खाकर ऊर्जा प्राप्त करते हैं। मांसाहारी प्राणी इन प्राणियों को खाकर अपनी जीवनचर्या के लिए आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इसे 'भोजन शृंखला' कहते हैं। उदाहरण के लिए घास→टिड्डा→मेंढ़क। यह एक साधारण भोजन शृंखला है। यदि मेंढ़क को सांप और सांप को चील खा ले तो यह एक जटिल भोजन शृंखला बन जाती है। प्रकृति में इस प्रकार की कई भोजन शृंखलाएं हैं। किसी विशेष प्राकृतिक आवास के निवासियों की विभिन्न भोजन शृंखलाओं

का जाल 'भोजन जाल' (फूड वैब) कहलाता है।

भोजन जाल उन सम्मिलित जातियों के परस्पर संबंधों का एक नाज़ुक जाल है जो एक संतुलित और आत्मनिर्भर जीवन प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है। इस भोजन जाल की एक भी कड़ी के टूटने से दूसरी या संपूर्ण प्रणाली पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि बाघ तथा तेंदुआ जैसे मांसाहारी प्राणी नष्ट कर दिये जायें तो हिरणों की संख्या बेरोक-टोक बढ़ती जायेगी जिसके कारण वनस्पतियां बहुत जल्दी नष्ट हो जायेंगी और पुनः पनप नहीं सकेंगी।

प्रकृति में परस्पर संबंध कई प्रकार के होते हैं : पौधे और वनस्पतियां प्राणियों को आश्रय देती हैं; कीट और पक्षी फूलों का परागण करते हैं; प्राणी पौधों के बीजों के प्रसार में मदद करते हैं और परजीवी पौधों और प्राणियों को ग्रसित करते हैं। जीवों के मध्य कुछ संबंध लाभदायक होते हैं (सहजीवन या सिम्बायोसिस) और कुछ नहीं। प्रकृति के कुछ सफाई कर्मचारी भी हैं, जैसे—कौआ, चील, लकड़बग्घा और कई अन्य मुर्दाखोर प्राणी। जीवाणु मरे हुए जीवों के सड़ने-गलने में मदद करते हैं और इस तरह मृत प्राणियों और पौधों के कार्बनिक तथा अकार्बनिक अंश को दोबारा प्रकृति में लौटा देते हैं जिसका उपयोग नये जीव करते हैं।

प्रकृति पौधों और प्राणियों के बीच बहुत जटिल लेकिन संतुलित संबंध बनाये रखती है। जल चक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, खनिज चक्र आदि जैव-भू रासायनिक चक्रों से जीवित प्राणियों और वातावरण के बीच आवश्यक तत्वों के लेन-देन का चक्र निरंतर चलता रहता है। इस तरह पृथ्वी पर संपूर्ण जीवन आपस में जुड़ा हुआ है। प्रकृति ने हमारी पृथ्वी को जो प्राणी, पौधे व भौतिक संसाधन प्रदान किये हैं, उनके संरक्षण के महत्व पर विचार करने के लिए इन वातावरण संबंधी परिस्थितियों का ज्ञान होना आवश्यक है।

जीवन की विविधता

पृथ्वी पर जीवन का आरंभ लगभग 600 करोड़ वर्ष पहले हुआ माना जाता है। इसमें पांच लाख से अधिक प्रकार के पौधे तथा दस लाख विभिन्न प्रकार के प्राणी हैं। संपूर्ण जीवन पृथ्वी की एक पतली पर्त तक सीमित है जिसे जीव-मंडल (बायोस्फियर) कहते हैं। पृथ्वी के जीव-मंडल को विशेष प्रकार की जलवायु तथा भौगोलिक विशेषता वाले कई प्राकृतिक आवासों या बायोम में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें क्षेत्र विशेष के अनुरूप अनेक प्रकार के पौधों और प्राणियों

को जीवित रहने में मदद मिलती है। प्राकृतिक आवास (बायोम) जीवों के समुदायों से बनता है जो किसी विशेष जीवन क्षेत्र में एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, उष्ण कटिबंधी वर्षावन विविध प्रकार के ऐसे पौधों तथा प्राणियों का बायोम है, जो वर्षावन को जन्म देने वाली परिस्थितियों में रहने के आदी हैं। पेड़ों की ऊंची घनी शाखाओं में बंदर, उड़न गिलहरियां तथा पक्षी रहते हैं। घने वन के धरातल पर बाघ, हिरण, सांप, कीट, मिलीपीड (गोजर) आदि रहते हैं। वर्षावन की विशेषता काफी अधिक वर्षा और उष्ण तथा नम जलवायु है। इसी प्रकार समुद्र, झील, घास के मैदान, नम भूमि, शंकुधारी वृक्षों के वन, पतझड़ी वन, रेगिस्तान और तटवर्ती क्षेत्र विभिन्न प्रकार के बायोम या विशेष वातावरण के उदाहरण हैं, जिनमें इन आवासों में जीवित रहने योग्य पौधे और प्राणी पाये जाते हैं।

इस प्रकार प्रकृति हमारे ग्रह पर विभिन्न जलवायु वाले और भौगोलिक क्षेत्रों में संतुलित ढंग से रहने के अभ्यस्त जीवित प्राणियों का अत्यंत जटिल तथा विषम जाल प्रस्तुत करती है। यह हमारी प्राकृतिक विरासत है : एक ऐसी विरासत जिसमें हम स्वयं प्राणियों की कई जातियों में से एक हैं जो अपने निर्वाह तथा जीवित रहने के लिए संपूर्ण प्रणाली पर निर्भर करती हैं।

भारत में प्राणियों की जातियां

भारत में विभिन्न प्रकार के प्राणी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। यहां प्राणियों की लगभग 75,000 जातियां पायी जाती हैं जिनमें 340 स्तनधारी, 1200 पक्षी, 420 सरीसृप, 140 उभयचर, 2000 मछलियां, 50,000 कीट, 4,000 मोलस्क तथा अन्य बिना रीढ़वाले प्राणी हैं।

हाथी स्तनधारी प्राणियों में से एक है जो भारत में प्राचीन समय से पौराणिक तथा शाही समारोहों की शान रहा है। अन्य हैं–गौर या भारतीय बाइसन, भारतीय भैंस, नील गाय, चौसिंगा (भारत का अनूठा प्राणी), काला हिरण, गोरखुर या भारतीय जंगली गधा और एक सींग वाला गैंडा। यहां हिरण की भी कई जातियां पायी जाती हैं जैसे हंगल, स्वेम्प (दलदली) हिरण, चीतल, कस्तूरी मृग, थामिन तथा पिसूरी।

शिकारी प्राणियों में एशियाई सिंह अथवा शेर संसार में अफ्रीका के बाहर पाया जाने वाला एकमात्र शेर है। बाघ भारत का राष्ट्रीय प्राणी है जो अपने सुंदर रंग, आकर्षक बनावट तथा प्रचंड शक्ति के लिए प्रसिद्ध है। भारत में इसे सदैव सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। मांसाहारी प्राणियों के बीच अपनी गरजती

हुई आवाज के साथ बाघ बहुत ही सुंदर तथा आकर्षक दिखायी देता है। गरजती आवाज को यह शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रयोग करता है। संसार में पायी जाने वाली बाघ की आठ प्रजातियों में से एक बंगाल का बाघ है। शाही बंगाल बाघ संपूर्ण भारत के अतिरिक्त पड़ोसी देशों नेपाल, भूटान तथा बंगलादेश में भी पाया जाता है। बिल्ली परिवार की अन्य जातियों में तेंदुआ, लमचित्ता अथवा बदली तेंदुआ, साह (स्नो लेपर्ड) तथा छोटी बिल्लियां हैं।

यहां बंदरों तथा लंगूरों की कई जातियां मिलती हैं। भारत का एकमात्र कपि हुलक गिब्बन पूर्वी क्षेत्र के वर्षा वनों में पाया जाता है। सिंह के समान पूंछ वाला बंदर दक्षिण भारत में पाया जाता है। उसके चेहरे के चारों ओर बालों का घेरा होता है।

भारत में अनेक प्रकार के रंग बिरंगे पक्षी पाये जाते हैं। भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर सबसे सुंदर पक्षियों में से एक है, विशेष रूप से नर मोर जिसकी चमकीली नीली गर्दन, पंखे की शक्ल की कलगी तथा लंबी शानदार पूंछ होती है। मादा के सामने अपनी पूंछ को हिलाते हुए नर का प्रणय नृत्य बहुत ही दर्शनीय होता है। प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य, लोक गीतों तथा कथाओं में इस पक्षी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मोर मैदानों में सर्वत्र पाये जाते हैं, परंतु मुख्य रूप से उत्तरी भारत के सूखे खुले क्षेत्रों में अधिक होते हैं। कुछ अन्य पक्षी जैसे तीतर, बटेर, बतख, तोते, कबूतर, सारस, धनेश और शकरखोरा वनों तथा दलदलों में निवास करते हैं।

हिमालय की विशाल पर्वत शृंखला में आकर्षक प्राणी पाये जाते हैं जिनमें जंगली भेड़ और बकरियां, मारखोर तथा साकिन (आइबैक्स) सम्मिलित हैं। पहाड़ों के ऊपरी भागों में साह तथा छोटा पांडा भी मिलते हैं।

स्तनधारियों तथा पक्षियों की मोहक तथा सुंदर जातियों के अलावा भारत में कई प्रकार के सरीसृप, उभयचर तथा मछलियां भी मिलती हैं। सरीसृपों में चमड़े की पीठ वाले कछुए (जीवित कछुओं में सबसे विशालकाय), चिकने कछुए, हरे समुद्री कछुए और ताजे पानी के कछुओं की अन्य जातियां मिलती हैं। भारत में पाये जाने वाले मगरमच्छों में घड़ियाल, मुहानों में रहने वाले मगरमच्छ तथा मकर सम्मिलित हैं। यहां अनेक प्रकार की छिपकलियां पायी जाती हैं जिनमें वैरेनस की विभिन्न जातियां सम्मिलित हैं। साथ ही जहरीले नाग से लेकर बिना जहर वाले साधारण धामिन तक सांपों की कई जातियां मिलती हैं। उभयचर प्राणियों में मेंढ़क की सौ से अधिक तथा सैलामेन्डर की कुछ जातियां सम्मिलित हैं। झीलों, नदियों और समुद्र में मछलियों की अनेक जातियां पायी जाती हैं।

भारत में बिना रीढ़ वाले प्राणी भी बहुतायत से पाये जाते हैं जो विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों में रहते हैं। इनमें एक कोशिका वाले प्रोटोजोआ से लेकर एकाइनोडर्म (कंटकदेही) संघ तक के प्राणियों की जातियां हैं। कीड़े-मकोड़ों और मुलायम, लसलसे शरीर वाले मोलस्क की सुंदर जातियां भी बहुतायत से पायी जाती हैं।

32.9 करोड़ हैक्टेयर भूमि, 7516 कि. मी. समुद्री किनारा, सागर, झीलों, नदियों, विशाल हिमालय तथा अन्य पर्वतीय शृंखलाओं, राजस्थान के रेगिस्तान, पठार, दलदल तथा द्वीप समूहों (अंडमान एवं निकोबार तथा लक्षद्वीप) सहित भारत में न केवल भारी भौगोलिक विविधता है, बल्कि इसमें वनस्पतियों और प्राणियों की भी उतनी ही विविध व अद्भुत जातियां पायी जाती हैं।



विलुप्त होते वन्य प्राणी

वन्य जीवों अर्थात् पौधों और प्राणियों का स्वस्थ और सकुशल रहना कई बातों पर निर्भर करता है। उचित जलवायु, भोजन, जल और आश्रय जीवित प्राणियों की मूल आवश्यकताएं हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र इसका जीता-जागता उदाहरण है कि किस प्रकार प्राणी और पौधे इन संसाधनों का उपयोग करते हैं, प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करके स्वयं को उनके अनुकूल ढालते हैं और अपने प्राकृतिक आवास के अनुरूप ही जीवनक्षम तथा स्वस्थ आबादी के रूप में पनपते हैं। पृथ्वी के वातावरण में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं तथा आज जो जीवित प्राणी पाये जाते हैं वे विकास तथा परिवर्तित वातावरण के प्रति अनुकूलता की देन हैं।

प्रकृति में पारिस्थितिक तंत्र करोड़ों वर्षों के दौरान विकसित हुए हैं। पारिस्थितिक तंत्र का एक विशेष लक्षण जनसंख्या के स्थायीकरण की रक्षा करना है ताकि प्राकृतिक संतुलन बना रहे। यदि प्राणियों की केवल एक विशेष जाति में ही प्रजनन होता तो प्राकृतिक आवास उसी जाति से भर जाता और उसके प्रत्येक सदस्य के लिए भोजन के साधन कम हो जाते। कई प्राणी बहुत जल्दी-जल्दी संतानोत्पत्ति करते हैं। कीट हजारों की संख्या में अंडे देते हैं। कुतरने वाले प्राणी प्रत्येक वर्ष 100 से लेकर 120 तक बच्चे पैदा करते हैं और कुछ मछलियां प्रत्येक प्रजनन ऋतु में लाखों की संख्या में अंडे देती हैं। मक्खियों का एक जोड़ा बिना किसी रुकावट के इतनी अधिक संख्या में संतानोत्पत्ति कर सकता है कि करीब तीन वर्षों में उनका भार पृथ्वी से भी अधिक हो जाये। यहां तक कि धीमी गति

से प्रजनन करने वाले हाथी के एक जोड़े से भी 750 वर्षों में करीब एक करोड़ 90 लाख हाथीं तैयार हो सकते हैं।

यह सब आश्चर्यजनक लगता है न ! लेकिन प्रकृति में ऐसा क्यों नहीं होता है? किन कारणों से प्राणियों की जनसंख्या नियंत्रण में रहती है ? इसका एक कारण है–भोजन के लिए स्पर्धा। एक जाति के प्राणी भोजन के एक ही साधन के लिए स्पर्धा करते हैं जिसका शारीरिक रूप से अयोग्य प्राणियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भीड़-भाड़ भी विनाश के अन्य कारणों को जन्म देती है, जैसे बीमारी और अपर्याप्त पोषण। परभक्षण भी एक और कारण है। पारिस्थितिक तंत्र का यह एक प्राकृतिक नियम है कि मांसाहारी प्राणी शाकाहारी प्राणियों को खाकर जीवित रहते हैं जैसी कि भोजन शृंखला के विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है। विपरीत जलवायु, प्राकृतिक विपत्तियां, पारिस्थितिक आवास का नष्ट होना आदि प्राणियों की जनसंख्या पर नियंत्रण के अन्य कारण हैं। इस प्रकार जनसंख्या उन कारणों से नियंत्रित होती है जो अंत में वातावरण की जीवन पनपाने की क्षमता को सुनिश्चित करते हैं। सभी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र उपलब्ध संसाधनों के अनुसार प्राणियों की एक विशेष संख्या को ही जीवित रख सकते हैं। परिवेश प्रणाली की जीवन पनपाने की इसी अद्भुत क्षमता के कारण परस्पर निर्भर और एक-दूसरे से संबंधित प्राणियों की जनसंख्या के बीच नाजुक संतुलन बना रहता है।

प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र उन विविध प्रकार के जीवों का पालन-पोषण करता है जो उसके वातावरण के अनुकूल होते हैं। वे जीव आपसी निर्भरता और आसपास के भौतिक संसार से संबंधित घटनाचक्र में भाग लेते हैं। पौधों द्वारा अर्जित ऊर्जा प्राणियों को प्राप्त होती है। पौधे भूमि से पोषक तत्व प्राप्त करते हैं जो उनकी मृत्यु तथा सड़ने-गलने के बाद भूमि में वापस लौट जाते हैं। मृत्यु का स्थान नवजीवन ले लेता है। 'प्रकृति में संतुलन' एक ऐसा अबोधगम्य तथा जटिल प्रदर्शन है जो लाखों वर्षों से वर्ष-दर-वर्ष, शताब्दी-दर-शताब्दी चलता ही आ रहा है।

जातियों का प्राकृतिक विलुप्तीकरण

पारिस्थितिक तंत्र के जटिल तथा स्थायी होते हुए भी ऐसे अनेक प्राणी जो प्रारंभिक भूवैज्ञानिक युगों में पृथ्वी पर विचरण करते थे, अब विलुप्त हो गये हैं। विलुप्त होना प्राणियों के विकास की एक प्राकृतिक घटना है। कुछ जातियां धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती हैं क्योंकि वे प्रकृति में अधिक अनुकूल जातियों के मुकाबले

में ठहर नहीं पातीं। कभी-कभी प्राणियों का एक संपूर्ण समूह भी विलुप्त हो जाता है, जैसा आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व क्रेटेसियस काल के अंत में डायनोसौरों के साथ हुआ। कई स्तनधारी जैसे मैमथ और मेस्टाडोन भी विलुप्त हो गये हैं। कई अन्य प्रकार के असंख्य प्राणी और पौधे फले-फूले और फिर विलुप्त हो गये। हमें उनके विषय में पृथ्वी की परत में सुरक्षित जीवाश्मों (फासिल) से पता चलता है। विलुप्त होना अपरिवर्तनीय है। यह उस विकास प्रक्रिया का भाग रहा है जो पिछले लाखों वर्षों से चलती रही है और जिसके द्वारा अधिक विकसित प्रकार के जीव उत्पन्न हुए हैं। चार्ल्स डार्विन, जिसने प्राकृतिक चुनाव के आधार पर विकास के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, का सबसे बड़ा योगदान विकास से हुए परिवर्तनों और नये प्रकार के जीवों की उत्पत्ति की तर्कसंगत व्याख्या है। उसने कहा कि वे जीव ही सफल होते हैं जो स्वयं को वातावरण के अनुकूल ढाल कर संतानोत्पादन करते हैं।

जातियों का विलुप्त होना मनुष्य की उत्पत्ति से भी बहुत पहले करोड़ों वर्षों से चला आ रहा है। आदि मानव प्रकृति से मिल कर रहा और उसने प्राणियों की जातियों का विनाश नहीं किया। परंतु विश्व में सभ्यता के विस्तार और प्रकृति के बढ़ते हुए शोषण का वन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। प्राणियों का शिकार, वातावरण में परिवर्तन, पारिस्थितिक आवास का नष्ट होना, भूमि, वायु और जल का प्रदूषण, मानव जनसंख्या में तीव्र बढ़ोतरी आदि कारण इस युग में प्राणियों की जातियों के विलोपन के उत्तरदायी हैं। 17वीं सदी से अब तक स्तनधारियों की लगभग 120 और पक्षियों की 150 जातियां विलुप्त हो चुकी हैं। औद्योगिक युग के आगमन के पश्चात मानव हस्तक्षेप के कारण प्राणियों के विलुप्त होने की गति बढ़ गयी है।

मारीशस का पक्षी डोडो (रेफस कुकुलेटस), उत्तरी अमेरिका का यायावर (घुमन्तू) कबूतर (एक्टोपिस्टेस माईग्रेटोरियस), मैडागास्कर का हाथी पक्षी (ऐइपोरनिस मैक्सीमस), फ्लोरिडा का रंगीन गिद्ध (सार्कोर्हेम्पस सेकरा), अंतरीप सिंह (पेंथरा लिओ मेलेनोचेइटस) और दक्षिणी अफ्रीका का कुआगा (ईकूस बुरशेलाई कुआगा) उन जातियों के उदाहरण हैं जो पिछली कुछ सदियों में विलुप्त हो गयी हैं।

भारत में इस सदी में चीता (एसिनोनिक्स जुबाटस वेनाटिकस—ग्रिफिथ), छोटे आकार का एक सींग वाला गैंडा (राइनोसेरोस सोन्डेइकस डेसमारेस्ट), गुलाबी सिर वाली बतख (रोडोनेसा केरियोफाइलेसिया) और पहाड़ी बटेर (आफराईसिया सुपरसिलियोसा) विलुप्त हो चुके हैं। कई स्तनधारी और पक्षी दुर्लभ व संकटग्रस्त

हो गये हैं। वनों के बढ़ते हुए विनाश के कारण कई प्राकृतिक क्षेत्र घट गये हैं और प्रायः प्राणी छोटे क्षेत्रों में सीमित हो गये हैं।

प्राणी किस प्रकार संकटग्रस्त हो जाते हैं

विकास की प्रक्रिया में अधिक उत्तम और बदलते वातावरण के अधिक अनुकूल जीवों को पनपने देने के लिए प्रकृति जातियों का विलोपन करती है। मनुष्य की विनाशकारी गतिविधियों के कारण निकट अतीत में कई जातियां लुप्त हो गयी हैं। डोडो, यायावर कबूतर और भारतीय चीता विकास की प्रक्रिया में विलुप्त नहीं हुए। उनका इतना शिकार किया गया कि वे विलुप्त हो गये। औद्योगीकरण की बढ़ती हुई गति और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण से वातावरण अर्थात् भूमि, जल, वायु, पेड़-पौधों और प्राणियों पर मानव के दुष्प्रभाव के कारण हाल ही में कई जातियां विलुप्त हो गयी हैं और कई अन्य जातियां विलुप्त होने की प्रतीक्षा सूची में हैं।

उपर्युक्त 'प्रतीक्षा सूची' में ऐसे अनेक प्राणी हैं जिनकी यदि रक्षा न की गयी तो वे विलुप्त हो जायेंगे। शहरी क्षेत्रों का विस्तार, वनों का विनाश, सड़कों, रेल मार्गों, बांधों का निर्माण, कृषि-कार्य, जिनमें कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग सम्मिलित है, साथ ही प्रदूषण और गैर कानूनी शिकार के कारण प्राणियों की संख्या कम हो गयी है और उनके वितरण के क्षेत्र भी बदल गये हैं।

पारिस्थितिक आवास का विनाश

मान लीजिए, बिना आपकी जानकारी के कोई कारखाना या फुटबाल स्टेडियम बनाने के लिए आपके घर पर बुलडोजर फिरवा दिया जाये, आपके परिवार के लोग मार दिये जायें या घायल हो जायें और जहां आप रहते हों वह स्थान तहसनहस कर दिया जाये। कोई ऐसा व्यक्ति न हो जो आपकी सहायता कर सके, कोई ऐसा स्थान न हो जहां आप जा सकें और आपको एक निर्दयी वातावरण, भूख तथा बीमारी जैसे संकटों का सामना करना पड़े। आपके परिवार के बचे हुए सदस्य इधर-उधर घूमते रहें या एक ऐसे आवास की खोज में बाहर चले जायें जहां वे पुनः बस सकें। इस प्रयास में वे सफल हो भी सकते हैं और नहीं भी। बढ़ती हुई जनसंख्या की विकास संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मानव की हरकतों का प्राणियों की जातियों पर ऐसा ही प्रभाव पड़ा है।

वनों का विनाश वन्य प्राणियों के नष्ट होने का एक प्रमुख कारण है।

जनसंख्या में वृद्धि तथा संसाधनों की बढ़ती हुई आवश्यकता के कारण वनों को खेती, आवास और मवेशियों के चरने के लिए साफ कर दिया गया या उनका अतिक्रमण किया गया। प्रौद्योगिक विकास तथा मानव की प्रगति प्राकृतिक संसाधनों के शोषण के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। इमारती लकड़ी, फर्नीचर तथा ईंधन के लिए जंगल काटे गये। उद्योगों के लिये भी काफी मात्रा में वन संसाधनों की आवश्यकता पड़ी जैसे कागज बनाने के लिए लकड़ी, गोंद और रेजिन निकालना, खनिज पदार्थों तथा भवन सामग्री आदि के लिए खानें खुदवाना आदि।

इस प्रकार प्राकृतिक आवास के विनाश का वन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इससे एक ऐसा वातावरण नष्ट हो जाता है जो उन्हें भोजन, प्रजनन क्षेत्र, तथा पक्षियों को घोंसले बनाकर अपने बच्चों का पालन करने की सुविधाएं प्रदान करता है। वन्य प्राणियों के पास इसके सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता कि वे अपने आपको नयी परिस्थितियों के अनुकूल बनायें, कहीं दूर चले जायें या नष्ट हो जायें। देश भर में प्राकृतिक आवास के काफी मात्रा में नष्ट हो जाने के कारण कई जातियों में प्राणियों की संख्या घट जाने से वह जाति दुर्लभ तथा संकटग्रस्त हो गयी है। प्रगति तथा संपन्नता की दौड़ में हमने प्रकृति के नाजुक संतुलन में बाधा डाली है।

शिकार तथा गैरकानूनी शिकार

आनंद, भोजन, फर, खाल, सींग, हाथी दांत आदि के लिए वन्य जीवों के अनियंत्रित शिकार ने उनके जीवन के लिए एक गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया है। भारत में चीते का इतना शिकार किया गया कि वह विलुप्त हो गया। जानवरों की खाल के अवैध व्यापार के कारण बहुत सारे बाघ, तेंदुए, हिरण, बाघदशा (फिशिंग केट), मगरमच्छ तथा सांप—यहां तक कि सुंदर पंखों वाले पक्षी भी समाप्त कर दिये गये हैं। हाथी दांत के लिए हाथियों का शिकार किया गया। गैंडा अपने सींग के लिए मारा गया क्योंकि ऐसा अंधविश्वास है कि उसमें कामोद्दीपक गुण होते हैं। हमारे देश में ऐसे गैरकानूनी व्यापार को रोकने के लिए कई कानून हैं, परंतु अनेक लोभी व्यक्ति, व्यापारी तथा निर्यातकर्ता प्रायः इनका उल्लंघन करते रहते हैं। सुंदर स्तनधारियों, पक्षियों तथा सरीसृपों के व्यापार तथा जैव-चिकित्सा अनुसंधानों में वन्य जीवों के प्रयोग से भी प्राणियों की संख्या घटी है।

प्रदूषण

विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कार्यों से वायु, जल और मिट्टी का प्रदूषण होता है जो न केवल हमारे बल्कि प्राणियों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। हानिकारक रसायनों से युक्त औद्योगिक कचरा झीलों, नदियों तथा समुद्रों में घुलकर जल जीवों पर बुरा प्रभाव डालता है। डी.डी.टी. और डील्ड्रिन जैसे कीटनाशी कई उपयोगी कीटों को नष्ट कर देते हैं और वन्य जीवों की संख्या को प्रभावित करते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद संपूर्ण संसार में मच्छरों के प्रभावशाली नियंत्रण के लिए डी.डी.टी. का प्रयोग शुरू हुआ। तभी से इसे खेतों और भंडारगृहों में कीटनाशक के रूप में काम में लाया जा रहा है। डी.डी.टी. भोजन के साथ जीवों के शरीर में पहुंच कर जमा हो जाती है। विकसित प्राणियों में, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है, यह अधिक से अधिक जमा हो जाती है। जीवों के शरीर में जीवनाशियों तथा रासायनिक प्रदूषकों के इस तरह जमा होते जाने की प्रक्रिया 'बायो मैग्नीफिकेशन' कहलाती है। जलीय पारिस्थितिक तंत्र में भी यह प्रक्रिया होती है। झील, नदी और अन्य जलस्रोतों में पारा, सीसा, तांबा आदि भारी धातुओं के यौगिक औद्योगिक प्रदूषकों के रूप मिलते रहते हैं। ये प्रदूषक जल में रहने वाले जीवों के शरीर में एकत्र होते रहते हैं। फिर भोजन शृंखला के हर अगले जीव के शरीर में इन भारी धातुओं के अधिक आयन जमा होते जाते हैं।

डी.डी.टी. पक्षियों, विशेष रूप से समुद्री पक्षियों पर अधिक प्रभाव डालती है। इससे पक्षियों के अंडों के खोल पतले हो जाते हैं जिसके कारण अंडे सेते समय मादा के भार से वे आसानी से टूट जाते हैं।

तेल प्रदूषण एक अन्य गंभीर समस्या है जो माल ढोने वाले जहाजों से होने वाले रिसाव या दुर्घटनाओं के कारण समुद्र में फैल जाता है। खाड़ी युद्ध के परिणामस्वरूप समुद्र में फैले तेल की अत्यधिक चिकनाहट मानव कार्यों की भयावहता का उदाहरण है जिनसे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र नष्ट हो जाते हैं। तेल से समुद्री पक्षियों के पंख चिपक जाते हैं, यह पेट में पहुंचने पर पक्षी को हानि पहुंचाता है और सभी प्रकार के जल जीवों को प्रभावित करता है। यह जलीय जीवों की श्वास क्रिया में बाधा डालता है और 'प्लवक' रूपी सूक्ष्म पौधों तथा प्राणियों को नष्ट कर देता है जिसका मछलियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे प्लवकों का आहार करती हैं।

मानव हस्तक्षेप के कई अन्य रूपों का भी वन्य जीवों की आबादी पर बुरा

प्रभाव पड़ता है। विदेशी जातियों का प्रवेश, अनुचित कृषि कार्य, घरेलू जानवरों से उत्पन्न बीमारियां, नदियों पर बांध बनाना, वनों के विनाश के परिणामस्वरूप बाढ़ तथा अकाल पड़ना आदि सभी कारणों से प्राणियों की जातियां संकटग्रस्त हुई हैं। कोई भी प्राणी उस समय संकटग्रस्त होता है जब उसकी संख्या बहुत ही कम हो जाती है अथवा उसके प्राकृतिक आवास का क्षेत्र इतनी तेजी से कम हो जाता है कि यदि उसे बचाने के लिए उपयुक्त कदम न उठाये जायें तो उसके तत्काल विलुप्त होने का संकट उपस्थित हो जाता है।

फिर भी आशा है

वन्य जीवों की संख्या में लगातार कमी तथा कुछ जातियों के लुप्त हो जाने का संकट पैदा हो जाने के बावजूद भारत में इनकी रक्षा करने तथा इनके विनाश को रोकने की अभी भी आशा है। हमारा देश वन्य जीवों की विविधता की दृष्टि से विश्व भर में अभी भी सबसे समृद्ध देशों में से एक है। देश में अब पौधों और प्राणियों के संरक्षण के गंभीर प्रयास किये जा रहे हैं (इनमें से कुछ प्रयासों का वर्णन एक अन्य अध्याय में किया गया है)।

संरक्षण का अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनुष्य को हानि पहुंचाकर वन्य जीवों का संरक्षण किया जाये। संरक्षण का अर्थ है प्रकृति का धैर्यपूर्वक व समझदारी से उपयोग। प्रकृति सभी जीवों का पालन करती है। हम अपनी संपूर्ण आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर करते हैं। यदि हम इस संसाधन का अधिक शोषण करते हैं तो यह अधिक समय तक शेष नहीं रहेगा। कहा जाता है कि संरक्षण चार स्तंभों पर टिका है। पहला स्तंभ नैतिकता से संबंधित है। यह हमारा नैतिक उत्तरदायित्व है कि हम अपनी प्राकृतिक विरासत को आगामी पीढ़ी तक पहुंचने से पहले नष्ट न होने दें। दूसरा स्तंभ सौंदर्य से संबंधित है। प्रकृति सुंदर है। हम सभी प्रकृति के सौंदर्य का आनंद उठाते हैं। रंगबिरंगे फूल, मनोरम हरियाली, शानदार पक्षी और तितलियां आनंद के अद्भुत स्रोत हैं। इनकी देखभाल तथा सुरक्षा हमारे जीवन को प्रदीप्त करती है। तीसरा स्तंभ है हमारे जीवन की आवश्यकताएं—भोजन तथा दैनिक उपयोग की आवश्यक सामग्री तैयार करने के लिए कच्चा माल। यदि हम इन संसाधनों को सुरक्षित नहीं रखते, अर्थात् इनका समझदारी से उपयोग नहीं करते, तो ये शीघ्र समाप्त हो जायेंगे। चौथा, वैज्ञानिक स्तंभ है। हमारी संपूर्ण औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति प्राकृतिक संसाधनों के बिना संभव नहीं हो सकती थी। मानव लाभ के लिए इन संसाधनों

को समझना, इनका प्रयोग तथा उपयोग करना हमारी संपूर्ण वैज्ञानिक प्रगति की नींव है। प्राणी और पौधे हमारे आनुवंशिक संसाधन भी हैं। यदि हमें प्राकृतिक संसाधन प्राप्त न होते तो पशुपालन, मत्स्यपालन, मुर्गीपालन आदि और नयी उन्नत नस्लों की उत्पत्ति, प्राणियों के भोजन की व्यवस्था और वैज्ञानिक अध्ययन जिनसे इतनी प्रगति हुई है, संभव न होते। पौधों तथा प्राणियों की वन्य जातियों का संरक्षण इस प्रगति की कुंजी है।

प्रकृति मां के लिए सब बच्चे समान हैं

वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति की ओर अग्रसर होते हुए हम यदि अपने वन्य जीवन को धीरे-धीरे ही सही पर लगातार विलुप्त होने देंगे तो हमारा स्वयं का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा।

'टाइम-लाइफ' पुस्तक 'वैनिशिंग स्पीशीज़' की सोचने को बाध्य करने वाली भूमिका में रोमेन ग्रे लिखते हैं : "प्रकृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह प्रमाणित कर सके कि वह डेफोडिल से अधिक मानव जाति की देखरेख करती है। हम किसी दिन उसी प्रकार शीघ्रता और सहजता से विलुप्त हो सकते हैं जैसे कई अन्य जातियां हमारे सामने विलुप्त हो चुकी हैं।...प्रकृति मां के लिए सब बच्चे समान हैं।...जब प्रकृति का संतुलन संकट में होता है, वह सदैव किसी भी मूल्य पर उस संतुलन को बनाये रखने का मार्ग ढूंढ़ लेती है। हमारे द्वारा संकटग्रस्त प्रकृति पलट कर हम पर ही प्रहार करेगी तथा डेफोडिल से अधिक माइकेलेन्जेलो, शेक्सपियर या मोज़ार्ट के प्रति अनुराग प्रदर्शित नहीं करेगी। हम एक महान शक्ति से खेल रहे हैं जो स्वयं जीवन है और उसके विषय में हमारी जानकारी शून्य के बराबर है। हम केवल इतना ही जानते हैं—प्रकृति जातियों में किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं करती।"



दुर्लभ, संकटग्रस्त जातियां

संकटग्रस्त प्राणी वे हैं जिनकी संख्या चिंताजनक रूप से कम है तथा जिनके प्राकृतिक आवास इतने सीमित तथा क्षतिग्रस्त हो चुके हैं कि उनके विलुप्त होने का संकट पैदा हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (आइ.यू.सी.एन.) एक 'रेड डेटा' पुस्तक रखती है जिसमें संकटग्रस्त प्राणियों का विवरण होता है। भारत में वन्य जीवन (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 के अंतर्गत भारत के पशु-पक्षियों को संरक्षण के आधार पर चार वर्गों में सूचीबद्ध किया गया है। प्रथम वर्ग की सूची में दुर्लभ और संकटग्रस्त जातियां रखी गयी हैं और उन्हें कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है। इनमें समय-समय पर संशोधन किया जाता है ताकि जातियों की सही स्थिति प्रस्तुत की जा सके। वर्तमान अनुमान के अनुसार भारत में स्तनधारियों की 81 जातियां, पक्षियों की 38 तथा उभयचरों और सरीसृपों की 18 जातियां संकटग्रस्त हैं। संरक्षण के प्रयासों से इनमें से कुछ प्राणियों जैसे बाघ, गैंडा, मगरमच्छ इत्यादि की स्थिति में सुधार हुआ है। एक दुर्लभ पक्षी जरडन कोर्सर को विलुप्त मान लिया गया था, लेकिन हाल ही में इसे पुनः खोज लिया गया है। पता लगा है कि यह सीमित प्राकृतिक आवासों में बहुत कम संख्या में अब भी जीवित है।

संकटग्रस्त प्राणियों की सुरक्षा के लिए उचित संरक्षण योजनाएं बनाने तथा लोगों में उनके प्रति जागरूकता जगाने के लिए संकटग्रस्त प्राणियों के रहन-सहन तथा प्राकृतिक आवासों का ज्ञान आवश्यक है। इस अध्याय में भारत के कुछ दुर्लभ तथा संकटग्रस्त प्राणियों के विषय में जानकारी दी गयी है।

स्तनधारी

साधारणतया प्राणी दो समूहों में विभाजित किये जाते हैं—रीढ़युक्त, जिनकी रीढ़ की हड्डी होती है तथा रीढ़हीन, जिनकी रीढ़ की हड्डी नहीं होती। मछलियां, उभयचर, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारी रीढ़वाले प्राणी हैं। कीड़े-मकोड़े, कृमि, घोंघे, आक्टोपस, स्टार फिश (तारामीन) आदि बिना रीढ़ वाले प्राणी हैं।

पृथ्वी पर रीढ़ वाले प्राणियों का जन्म लगभग 48 करोड़ वर्ष पहले हुआ। आज ये सबसे अधिक विकसित प्राणी हैं। इनमें भी स्तनधारी प्राणी सर्वोच्च स्थान पर हैं जो 20 करोड़ वर्ष पहले उत्पन्न हुए। स्तनधारियों में दो महत्वपूर्ण विशेषताएं होती हैं—शरीर पर बालों की उपस्थिति तथा बच्चों को दूध पिलाने के लिए स्तन ग्रंथियां। उच्च विकसित तंत्रिका तंत्र तथा अनेक प्रकार के वातावरणों में रहने की क्षमता के कारण स्तनधारी प्रायः पृथ्वी पर सर्वत्र पाये जाते हैं। यद्यपि यह बड़ा समूह नहीं है (पक्षियों की 8,600 जातियों, मछलियों की 21,700 जातियों तथा कीटों की 8,00,000 जातियों की तुलना में केवल 4,000 जातियां), लेकिन स्तनधारी, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं प्राणी जगत का सबसे अधिक सफल समूह है। आकार प्रकार, रूप तथा कार्य की दृष्टि से स्तनधारियों में काफी विविधता है। आकार में स्तनधारी हाल ही में खोजे गये किटिस होग नोज्ड बैट (सूअर की नाक जैसा एक चमगादड़) जैसे छोटे प्राणी, जिसका भार केवल 1.5 ग्राम है, से लेकर विशालकाय व्हेल तक होते हैं जिनमें से कुछ का भार 100 टन से भी अधिक है।

प्राणियों के अन्य समूहों की अपेक्षा स्तनधारियों पर मनुष्य की उपस्थिति का अधिक प्रभाव पड़ा है। हमने भोजन, वस्त्र, बोझा ढोने और घर में पालने के लिए अनेक स्तनधारियों को पालतू बना लिया है। प्रत्येक वर्ष जैव चिकित्सा अनुसंधानों में हम करोड़ों स्तनधारियों का उपयोग करते हैं। प्राकृतिक आवास को नष्ट करके कई स्तनधारियों को संकटग्रस्त और दुर्लभ बनाने के लिए भी हम उत्तरदायी हैं।

प्राइमेट

कपि, बंदर और मनुष्य प्राइमेट हैं। 'प्राइमेट' शब्द का प्रयोग स्तनधारियों के सबसे अधिक विकसित गण के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रकृति वैज्ञानिक कार्ल लिनेयस (1707-78) ने यह बताने के लिए किया कि ये 'प्राथमिक' प्राणी अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हैं। प्राइमेट अन्य प्राणियों से अपनी शारीरिक बनावट के कारण ही श्रेष्ठ नहीं हैं। कई अन्य प्रकार के निम्न श्रेणी के जीव (उदाहरण के लिए कीट)

विभिन्न परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए शायद अधिक अनुकूल हैं। प्राइमेट की श्रेष्ठता उनके श्रेष्ठ मस्तिष्क के विकास और उच्च कोटि की बुद्धि के कारण है।

पता चला है कि प्रथम प्राइमेट 7 करोड़ वर्ष पहले बहुत छोटे और पेड़ों पर रहने वाले प्राणी थे। वे कीटों को खाने वाले आदिम स्तनधारियों से विकसित हुए थे जो पेड़ों पर रहने वाले छछूंदरों के समान थे। अपनी विकास यात्रा में अधिकतर प्राइमेट पेड़ों पर रहते रहे। केवल कुछ कपि तथा मनुष्य इस जीवन शैली से अलग हो गये।

प्राइमेटों का मस्तिष्क अन्य स्तनधारियों से कहीं अधिक विकसित है। प्रारंभिक प्राइमेट के पेड़ों पर रहने के कारण कुछ ऐसे गुणों का विकास हुआ जिनसे जीवन संघर्ष में अत्यधिक सहायता मिली जैसे हाथों से पकड़ने की योग्यता, मांसपेशियों का तालमेल, शीघ्र प्रतिक्रिया तथा खोजी प्रवृत्ति। जीने के लिए दूसरे प्राणियों की तुलना में दुर्बल प्राइमेटों का अपने प्रतिद्वंद्वियों से अधिक चतुर तथा चुस्त होना आवश्यक था।

प्राइमेटों के दो मुख्य उपगणों में से एक में मनुष्य, कपि तथा बंदर हैं तथा दूसरे में लेमूर और उनके संबंधी। भारत में 'हुलक गिब्बन' ही एक मात्र कपि पाया जाता है। बंदरों में मॅकाक और लंगूर के अनेक कुल हैं। हमारे देश में पाये जाने वाले लेमूरों में केवल लोरिस ही हैं। भारत के संकटग्रस्त प्राइमेटों का संक्षिप्त विवरण आगामी पृष्ठों में दिया गया है।

सिंह-पूंछ वाला बंदर

मकाका सिलेनस (लिनेयस)

सिंह जैसी पूंछ वाला बंदर (मॅकाक) भारत का सबसे अधिक संकटग्रस्त प्राइमेट है। इसके बारे में सर्वाधिक ध्यान उस समय आकर्षित हुआ जब केरल में साइलेंट वेली जल विद्युत योजना पर राष्ट्रव्यापी बहस चल रही थी। परंतु इस योजना के बंद होने पर देश में संरक्षण आंदोलन की एक सफल कहानी के साथ सिंह-पूंछ वाले बंदर के जीवित रहने की अब आशा है।

काले बाल, एक अच्छी विकसित सफेद धूसर अयाल, अंत में बालों के गुच्छे के साथ सिंह जैसी पूंछ (जिससे इसका नाम प्रसिद्ध हुआ है) वाला बंदर बबून जैसा दिखाई देता है। यह घने, उष्णकटिबंधी , सदाबहार वनों में रहता है तथा फल, कोंपलें और पत्तियां खाता है। यह पश्चिमी घाट में नीलगिरि, अन्नामलाई, कार्डेमम हिल्स, साइलेंट वेली और पेरियार अभयारण्य (सेंक्चुरी) तक

सीमित है।

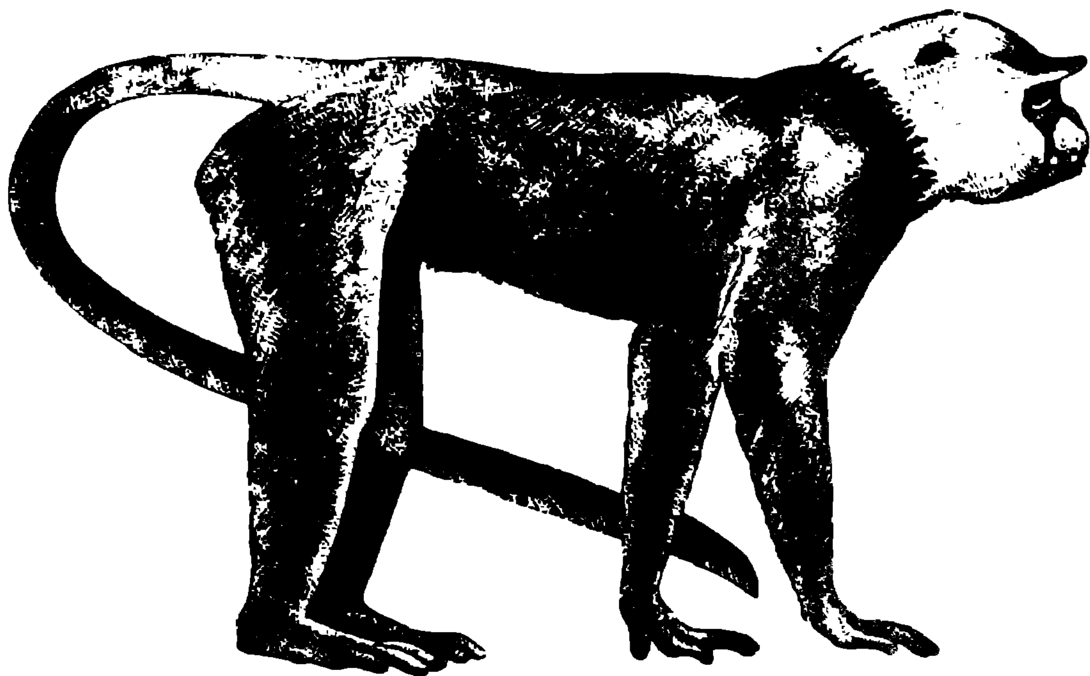
यह अत्यधिक सहिष्णु प्राणी है और उष्णकटिबंधी वनों में निवास करता है। यह मजबूत, मध्यम आकार का, छोटे सुगठित हाथ-पैरों, उभरी हुई गोल थूथन तथा भारी उन्नत भौंहों वाला प्राणी है। बड़ी गाल थैलियां भोजन पात्रों का कार्य करती हैं ताकि भोजन फुर्सत में आराम से चबाया जा सके।

सुनहरा लंगूर
प्रेसबाइटिस गी खजुरिया

काला चेहरा, शानदार सुनहरे से लेकर चमकीले क्रीम रंग के बाल और बहुत लंबी पूंछ सुनहरे लंगूर की विशेषताएं हैं। यह भारत और भूटान में बहने वाली संकोष और मानस नदियों के दोआबे में असम-भूटान सीमा के साथ हिमालय की तराई के सीमित क्षेत्रों में पाया जाता है। यह लंगूर अधिकतर समय ऊंचे पेड़ों पर बिताता है और इसकी लंबी पूंछ शाखाओं पर उछलते समय संतुलन बनाये रखती है।

नीलगिरि लंगूर
प्रेसबाइटिस जोहनी (फिशर)

नीलगिरि लंगूर का शरीर चमकदार काला होता है। सिर पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है। इसका आकार साधारण लंगूर के समान होता है। इसकी भी



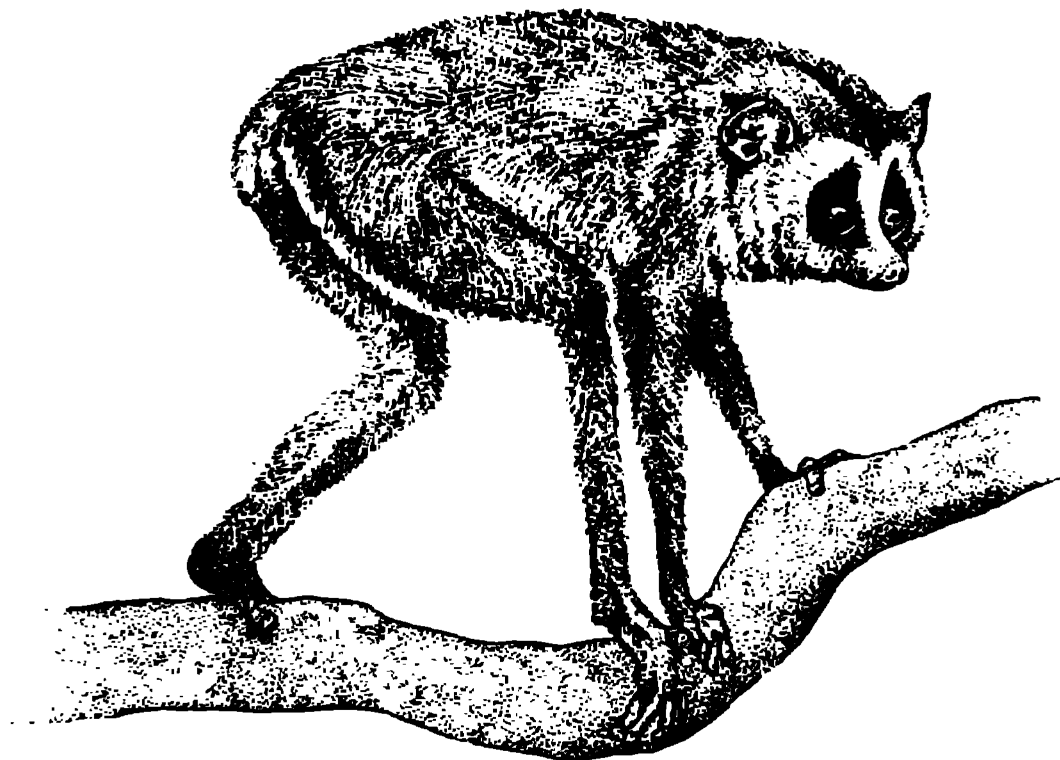
पूंछ लंबी होती है और जैसा कि इसके नाम से मालूम होता है यह मुख्य रूप से पश्चिमी घाट की नीलगिरि पहाड़ियों में पाया जाता है। यह कर्नाटक में कुर्ग, तमिलनाडु में पालनी की पहाड़ियों और केरल में अन्नामलाई, ब्रह्मगिरि और कार्डेमम हिल्स में भी पाया जाता है। आमतौर पर नीलगिरि लंगूर 5 से 16 तक के समूह में रहते हैं और फल, नर्म शाखाएं और पत्तियां खाते हैं। यह लंगूर प्रायः खेतों में फसलों को नुकसान पहुंचाता है।

शोला वनों के विनाश और फर व मांस के लिए गैरकानूनी शिकार के कारण अब नीलगिरि लंगूर की संख्या कम हो गयी है। इसके मांस में कामोद्दीपक गुण की भ्रांति के कारण इसका गैरकानूनी शिकार किया जाता है।

स्लेंडर लोरिस

लोरिस टार्डीग्रेडस (लिनेयस)

यह एक छोटा, दुबला-पतला, मनमोहक, बड़ी-बड़ी आंखों वाला प्राइमेट है। लंबे हाथ-पैर, सुविकसित तर्जनी, बड़े कान तथा पूंछ की अनुपस्थिति इसकी विशेषताएं हैं। इसका शरीर गहरे धूसर रंग का होता है जिसमें बीच-बीच में चांदी जैसे बाल होते हैं।



स्लेंडर लोरिस (तवांगु) एक रात्रिचर प्राणी है। यह रात में पेड़ों और झाड़ियों में भोजन के लिए फल, कीट, पेड़ों पर रहने वाले मेंढ़कों, छिपकलियों तथा छोटे पक्षियों का शिकार करता है। स्लेंडर लोरिस दिन में गेंद की तरह अपने शरीर

को लपेट कर, हाथों से पेड़ की डाली को पकड़कर और सिर को पैरों के बीच रखकर विश्राम करता है। यह अजीब तरह का दक्षिण भारतीय प्राइमेट केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश के वनों में पाया जाता है। आंखों की बीमारियों की दवा के लिए मारे जाने और अनुसंधान संस्थानों में प्रयोग के कारण इसकी संख्या अत्यधिक कम हो गयी है।

स्लो लोरिस

निक्टिसेबस कोकान्ग (बोडेर्ट)

लजीला लोरिस अर्थात् स्लो लोरिस खूब मोटा ताजा दिखाई देता है। यह मजबूत शरीर का, भारी बनावट वाला प्राणी है जिसका सिर गोल तथा आंखें भी गोल होती हैं। प्रत्येक आंख के चारों ओर गहरा भूरा घेरा बना होता है। इसकी पूंछ अविकसित होती है। पीठ के मध्य भूरी धारियों के साथ रजत भूरा नर्म तथा घना चर्मावरण होता है। भली-भांति विकसित अंगूठे व पंजे पेड़ों की शाखाओं को पकड़ने में सहायक होते हैं।



स्लेंडर लोरिस की भांति यह भी रात्रिचर है। स्लो लोरिस असम सहित उत्तरपूर्वी भारत के उष्णकटिबंधी वनों में पाया जाता है।

हुलक गिब्बन

हाइलोबेटीस हुलक (हार्लन)

हुलक गिब्बन भारत में पाया जाने वाला एकमात्र कपि है। यह सभी कपियों में सबसे अधिक प्रतिभासंपन्न कलाबाज है। शरीर के काले बाल, भौंहों के स्थान पर स्पष्ट सफेद पट्टी से युक्त गोल चेहरा, लंबे हाथ और पूंछ गायब होना इस



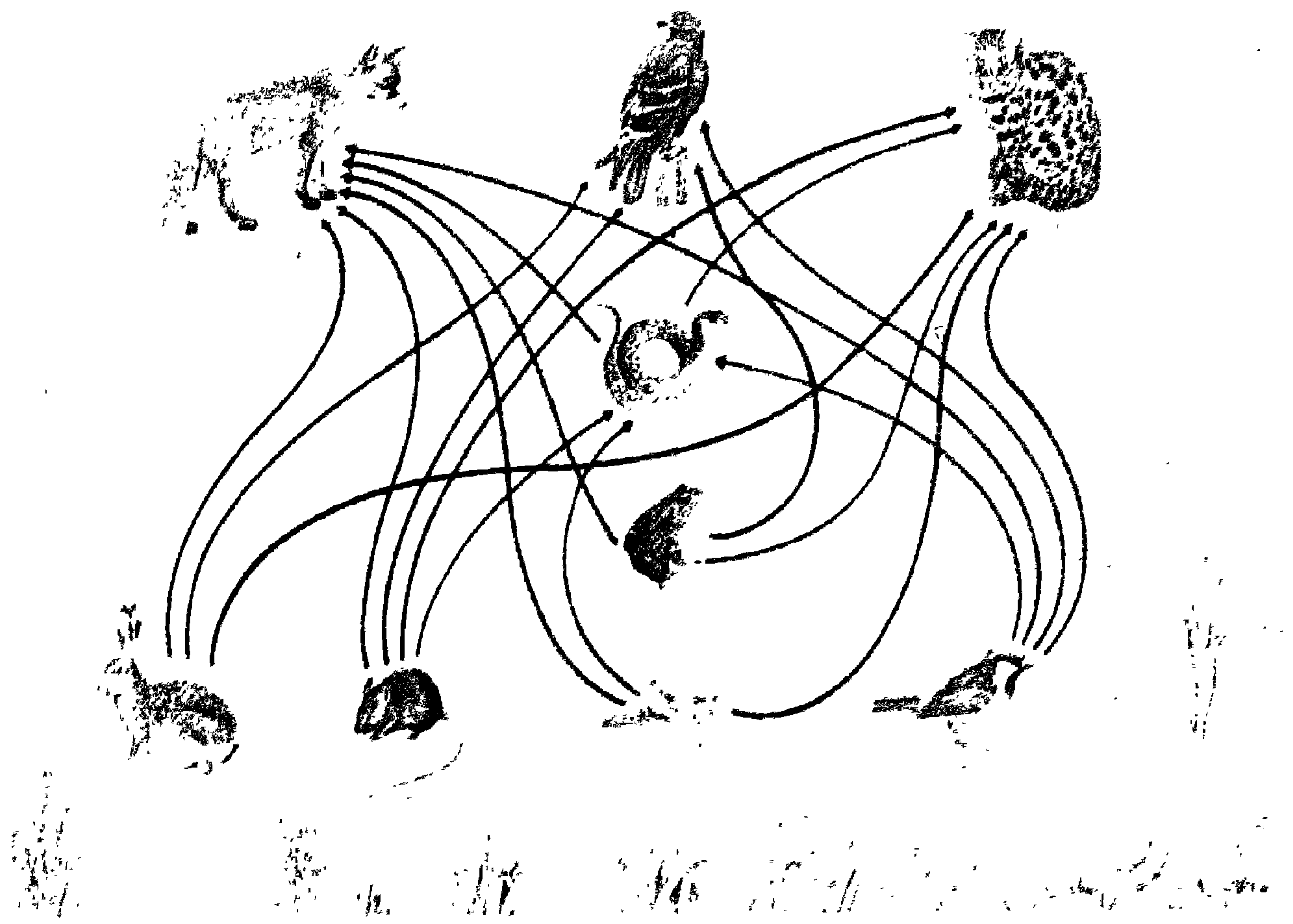
कपि के विशिष्ट लक्षण हैं। इसके कंधो के लचीले जोड़ों के कारण हाथों का संचालन आसान हो जाता है। इसके लंबे हाथ हुक की तरह डालियों पर जकड़ जाते हैं। यह एक हाथ से डाली पकड़ता है तथा दूसरे हाथ से दूसरी डाली पकड़ने के लिए आगे झूलता है और इस प्रकार आश्चर्यजनक गति से एक छलांग में तीन मीटर तक दूरी पार कर लेता है। कूदने के लिए गिब्बन डाली के ऊपर से झूलता है और दूसरी डाली को पकड़ने के लिए तैयार, अपने हाथों को ऊपर उठाये हुए शरीर को आगे धकेलता है।

गिब्बन की बाहें इतनी लंबी होती हैं कि जब यह खड़ा होता है तो इसकी उंगलियां जमीन को छू सकती हैं। दूसरे कपियों से इसकी नासिका अधिक उभरी हुई होती है। यदि भारी भौंहें तथा नीचा ढलाऊ मस्तक नहीं होता तो गिब्बन क़ाफी कुछ मनुष्य जैसा दिखायी देता।

हुलक गिब्बन उत्तरपूर्वी भारत के घने जंगलों में रहता है। यह बंगलादेश तथा म्यांमार और चीन के कुछ भागों में भी पाया जाता है। यह फल, पत्तियां, फूल तथा कीट खाता है। इसका परिवार छोटा होता है जिसमें नर, मादा तथा दो या तीन बच्चे होते हैं।

बिल्ली परिवार

घरेलू बिल्ली, सिंह, बाघ तथा तेंदुआ एक ही कुल या परिवार (फेलिडी) से संबंधित हैं। तेज गति के लिए चुस्त शरीर, काटने तथा मांस को फाड़ने के लिए (परंतु चबाने के लिए नहीं) विशेष प्रकार के दांत तथा मारने व शिकार को पकड़ने के लिए तीखे पंजों के कारण ये सबसे अनुकूल मांसाहारी प्राणी हैं। परभक्षी जीवन के लिए इस असाधारण अनुकूलता के साथ इन्हें उच्च बुद्धिमत्ता तथा सुनने की तीव्र संवेदना भी प्राप्त है। सभी मांसाहारियों में बिल्ली की आंखें सबसे बड़ी होती



भोजन जाल (पृष्ठ 2 देखें)



सुनहरा लंगूर (पृष्ठ 17 देखें)



सिंह-पूंछ वाला बंदर (पृष्ठ 16 देखें)



बाघ (पृष्ठ 21 देखें)



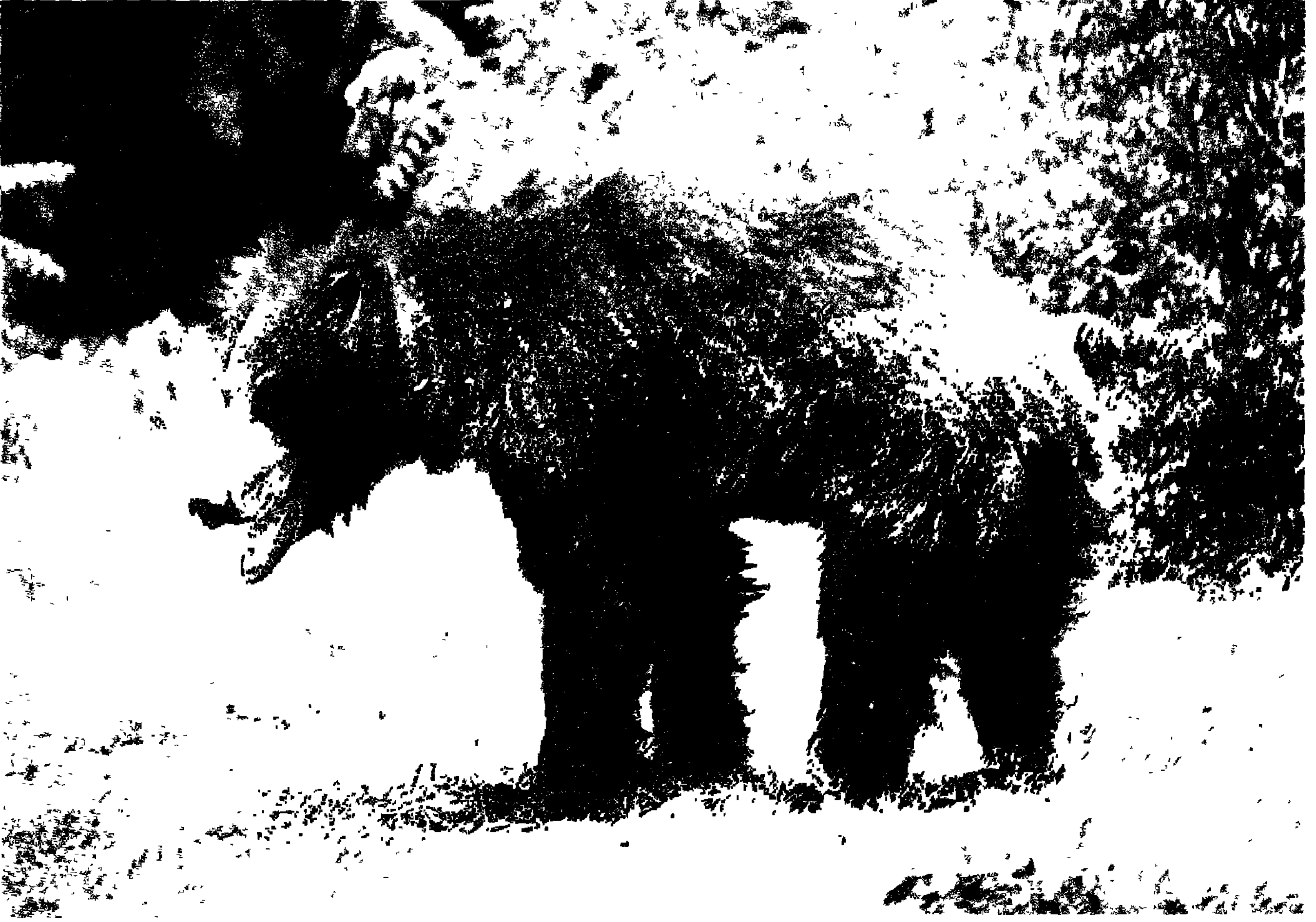
भारतीय सिंह (पृष्ठ 23 देखें)



तेंदुआ अथवा गुलदार (पृष्ठ 25 देखें)



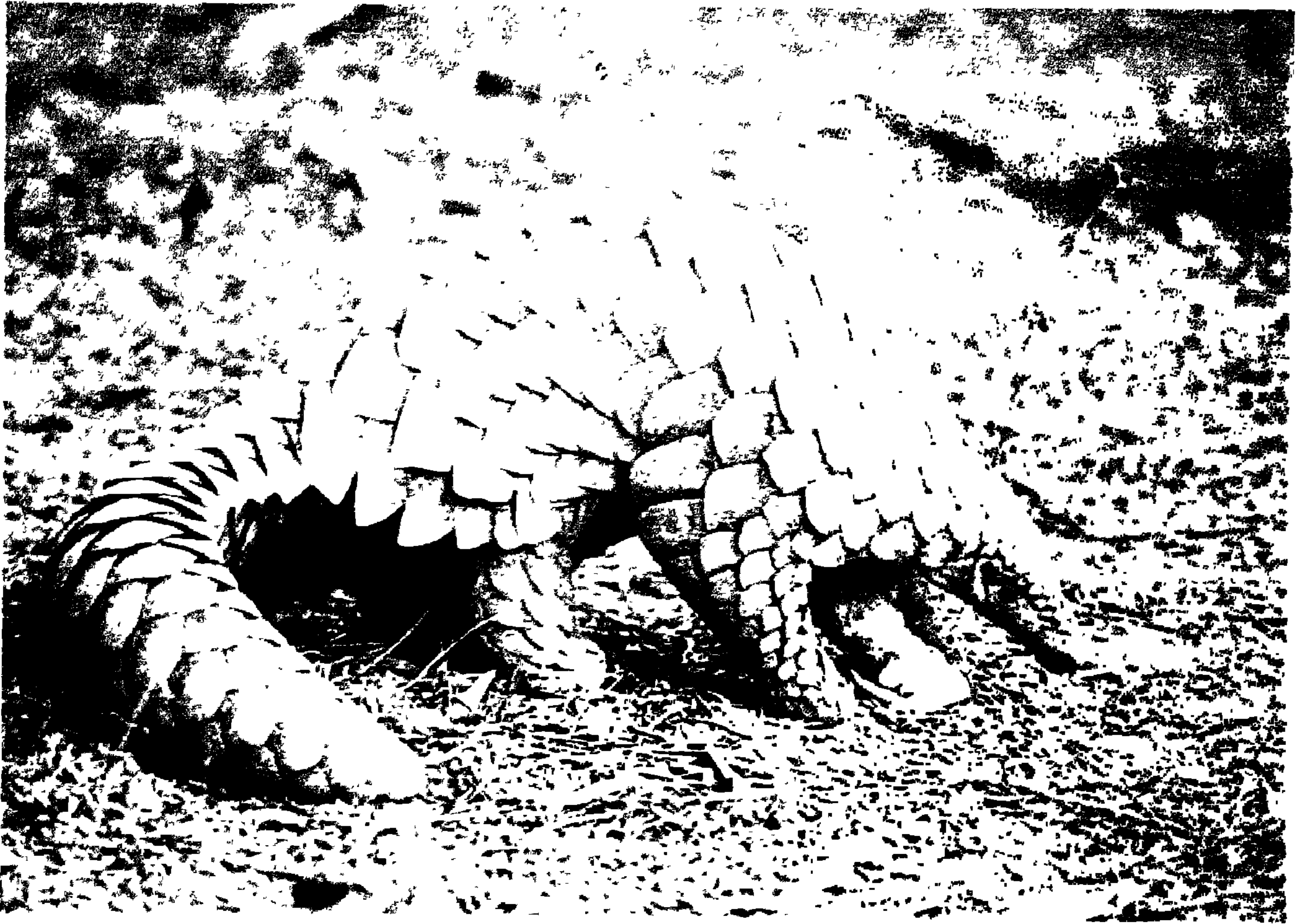
हिमालय का भूरा भालू (पृष्ठ 37 देखें)



रीछ (पृष्ठ 37 देखें)



लाल पांडा (पृष्ठ 39 देखें)



साल (भारतीय पेंगोलिन) का बच्चा (पृष्ठ 40 देखें)



जंगली भैंस (पृष्ठ 46 देखें)



जंगली हाथी (पृष्ठ 41 देखें)

हैं और उसकी दृष्टि बहुत अच्छी होती है। बिल्ली का शिकार करने का तरीका अपने शिकार को अचानक पकड़ना है। छिप कर यह शिकार की प्रतीक्षा करती है और जब शिकार पहुंच के भीतर होता है तो फुर्ती से दौड़ कर या छलांग लगाकर उसे पकड़ लेती है। जंगली बिल्लियों के दांत विशेषकर मांस खाने के अनुकूल होते हैं। रदनक (केनाइन) और कृंतक (इन्सिज़र) दांत शिकार को झपट कर पकड़ने तथा काटने के लिए होते हैं। चर्वणक दांत (मोलर) मांस को फाड़ने के लिए प्रयुक्त होते हैं।

बाघ बिल्ली परिवार के जीवित सदस्यों में सबसे बड़ा है। उसके बाद सिंह और तेंदुए का स्थान है। साह (स्नो लेपर्ड) तथा लमचित्ता (क्लाउडेड लेपर्ड) भारत में पाये जाने वाले तेंदुओं की दो अन्य जातियां हैं। बिल्ली परिवार की कुछ अन्य प्रजातियां जैसे सिकमार (मार्बल्ड कैट), सुनहरी बिल्ली, तेंदुआ बिल्ली (लेपर्ड कैट), बाघदशा (फिशिंग कैट), वन बिलाव (जंगल कैट), रेगिस्तानी बिल्ली (डेजर्ट कैट), पाला बिल्ली आदि भारत में पायी जाती हैं। प्राकृतिक आवास के नष्ट होने तथा गैरकानूनी शिकार के कारण बिल्ली परिवार की प्रायः सभी सजातियां आज संकटग्रस्त हैं।

बाघ

पेंथेरा टाइग्रिस (लिनेयस)

बाघ मांसाहारी प्राणियों में सबसे अधिक शानदार तथा मनमोहक प्राणियों में से एक है। यह बहुत ही कुशल शिकारी है। बाघ भारत के कई भागों में पाया जाता है, जैसे उष्ण-कटिबंधी वन, कछार या दलदली क्षेत्र, पतझड़ी वन तथा घास के मैदान। यह अच्छा तैराक भी है। भिन्न लंबाई-चौड़ाई की टूटे हुए क्रम में आड़ी-तिरछी काली धारियों से युक्त, इसका लालपन लिए हुए पीला शरीर दर्शनीय होता है। पैरों पर भी धारियां होती हैं और पूंछ पर काले घेरे होते हैं। बाघ की सूंघने की शक्ति और दृष्टि कमजोर होती है, पर सुनने की शक्ति बहुत ही अच्छी होती है। यह चुपचाप खड़े हिरण के पास से बिना ध्यान दिये गुजर सकता है परंतु यदि उसने कान या पैर हिला दिया तो बाघ का ध्यान तुरंत अपने शिकार की ओर आकर्षित हो जाता है।

बाघ अपने शिकार पर बड़ी चतुराई से आक्रमण करता है। चुपचाप बिना दिखे, बिना आवाज किये तथा बिना गंध के शिकार के पास तक पहुंचता है और छलांग लगाकर उस पर टूट पड़ता है। मारे हुए प्राणी को किसी सुरक्षित

स्थान पर घसीटकर ले जाता है और पेट भर कर खाता है। तत्पश्चात बाघ समीप ही विश्राम करता है और समय-समय पर भोजन के लिए आता है, यहां तक कि मांस के बिल्कुल सड़ जाने पर भी। बाघ के शिकार आमतौर पर विशाल स्तनधारी जैसे मृग, जंगली भैंसे तथा विभिन्न प्रकार के हिरण होते हैं।

बाघ, शक्तिशाली होने के बावजूद एक सौम्य स्वभाव का प्राणी है। यह सामान्यतया मनुष्यों से डरता है और उन पर विशेष परिस्थितियों में ही आक्रमण करता है। प्रायः यह तब होता है जब बाघ कमजोर हो जाता है और अपने सामान्य शिकार को नहीं पकड़ पाता या जब इसके क्षेत्र में कोई घुस आता है, खासतौर पर उस समय जब यह अपने बच्चों या शिकार की रखवाली कर रहा हो।

बाघ (विशेष रूप से बूढ़े बाघ) टिड्डियों, मछली, बिच्छू, केकड़ा तथा मेंढ़क पर भी जीवित रह सकते हैं। बाघ जब शिकार की खोज में घूमता है तो वह घने पेड़-पौधों के बीच से चलने की बजाय शिकारियों द्वारा बनायी गयी पगडंडियों, रास्तों तथा नदी के किनारों पर चलना पसंद करता है।

बाघ साधारणतया एकांतप्रिय तथा आत्मनिर्भर स्वभाव के होते हैं। कई बार वे लंबे समय तक जोड़े में रहते हैं। बाघिन जब संगम की इच्छुक हो तभी संगम होता है। संगम की कोई विशेष ऋतु नहीं होती। गर्भधारण काल 105 से लेकर 109 दिन का होता है और एक ब्यांत में एक से लेकर पांच बच्चे तक पैदा होते हैं। साधारणतया एक ब्यांत में दो बच्चे पैदा होते हैं। आधे बढ़ने तक बच्चे अपनी मां के साथ रहते हैं। बाघ 18 से 19 साल तक जीवित रह सकता है।

भारत में बाघ, संरक्षण की सफल कहानी का प्रतिनिधित्व करता है। यह विश्वास किया जाता है कि 50 साल पहले भारत में 40,000 से अधिक बाघ थे। प्राकृतिक आवास के विनाश तथा गैरकानूनी शिकार के कारण इनकी संख्या काफी कम हो गयी थी। 1972 में बाघों की राष्ट्रीय गणना करने पर इनकी संख्या 1827 पायी गयी। इस शानदार प्राणी की संकटग्रस्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए इसकी रक्षा के लिए 1973 में भारत सरकार ने बाघ परियोजना (प्रोजेक्ट टाइगर) प्रारंभ की जिसमें 9 अभयारण्य बाघ संरक्षण केंद्र घोषित किये गये। उसके बाद कई और बाघ संरक्षण केंद्र बनाये गये। अब परियोजना के अंतर्गत 19 अभयारण्य राष्ट्रीय उद्यान हैं। सुव्यवस्थित योजनाओं तथा प्राकृतिक आवास के परिणामस्वरूप बाघों की संख्या काफी बढ़ गयी है। अनुमान है कि भारत के वनों में अब 4000 से अधिक बाघ हैं।

'बाघ परियोजना' बाघों को जीवित रखने का संरक्षण कार्यक्रम है। अकेले बाघ को बचाना कठिन है, इसलिए इसको बचाने के लिए इसके शिकार अर्थात्

शाकाहारी प्राणियों की संख्या भी बढ़ानी होगी। इन शाकाहारी प्राणियों के जीवित रहने के लिए वनों में विविध प्रकार की वनस्पतियों को भी विपुल मात्रा में बनाये रखना होगा। इस प्रकार बाघ की रक्षा का अर्थ संपूर्ण परिवेश की रक्षा करना है।

वन के पारिस्थितिक तंत्र को बनाये रखने में बाघ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भोजन के सूचीस्तंभ में यह सर्वोपरि है। यह शाकाहारियों पर नियंत्रण रख कर, उनके द्वारा पेड़-पौधों तथा भूमि का अत्यधिक विनाश रोकता है। बाघ दुर्बल प्राणियों को नष्ट कर स्वस्थ शाकाहारी प्राणियों की संख्या बनाये रखने में मदद करता है।

1951 में मध्य प्रदेश में रीवा के वन में पहला सफेद बाघ पकड़ा गया था। एक सामान्य बाघिन से इसकी संतान पैदा करवायी गयी। आज भारत में 40 से भी अधिक सफेद बाघ हैं और विश्व भर के चिड़ियाघरों में ऐसे बाघों की संख्या और भी ज्यादा है। आदतों तथा आवास में सफेद बाघ साधारण बाघ से भिन्न नहीं हैं। ये वास्तव में एक ही जाति के उत्परिवर्तित प्राणी हैं जिनमें मेलेनिन वर्णक नहीं पाया जाता।

एशियाई सिंह
पेंथेरा लियो पेर्सिका (मेयेर)

बाघ की तुलना में एशियाई सिंह या बबर शेर अधिक संकटपूर्ण स्थिति में है। कभी यह उत्तरी भारत, मध्य भारत, राजस्थान तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक भी पाया जाता था, परंतु अब यह गुजरात में गीर वन तक ही सीमित रह गया है। 1907 में गीर में केवल 13 सिंह बचे थे, जब जूनागढ़ के महाराज ने उन्हें पूर्ण संरक्षण प्रदान किया।

बाघ की तुलना में, जो काफी घने वनों में रहना पसंद करता है, सिंह झाड़ीवाले पतझड़ी वनों में रहता है। यह रात्रिचर शिकारी है और इसकी श्रवण शक्ति अत्यंत विकसित है। अफ्रीकी सिंह की तुलना में इसकी अयाल कम होती है। सिंहनी की अयाल नहीं होती है। सिंह के चर्मावरण का रंग रेतीला भूरा या हल्का पीला होता है जिसमें कोई निशान नहीं होता जबकि इसके बच्चों पर धब्बे तथा लकीरें होती हैं।

बिल्लियों में सिंह सबसे अधिक सामाजिक प्राणी हैं। यद्यपि सिंह, विशेषकर नर अकेले रह सकते हैं, लेकिन वे प्रायः खुले समूहों में पाये जाते हैं जिन्हें प्राइड

कहते हैं। एक प्राइड में प्रायः एक-दूसरे से संबंधित कई सिंहनियां और उनके बच्चे होते हैं। वयस्क नर कुछ महीनों या सालों तक समूह के साथ रहने के लिये प्राइड के अस्थायी सदस्य बन जाते हैं। प्राइड के अधिकार के लिए नर भयंकर युद्ध करते हैं। विजेता संपूर्ण समूह पर प्रभुत्व जमा लेता है। जब वह कमजोर पड़ने लगता है तो अधिक युवा तथा शक्तिशाली नर उसे प्राइड में से निकाल देते हैं तथा प्राइड पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। निकाला हुआ नर या तो नया प्राइड ढूंढ़ लेता है या अकेला रहता है।

सिंह हिरण, मवेशी, सूअर तथा अन्य शाकाहारी जंतुओं को खाता है। यह 80 कि. मी. प्रति घंटे की तीव्र गति से अपने शिकार का पीछा करता है। एक पंजा शिकार की पीठ पर तथा दूसरा छाती या पसलियों पर रखकर शिकार को पकड़कर नीचे गिराता है। शिकार की गर्दन में दांत चुभा कर तब तक पकड़कर रखता है जब तक कि वह दम घुटने से मर नहीं जाता। शिकार प्रायः सिंहनियां ही करती हैं और नर शिकार के बाद समूह में सम्मिलित हो जाते हैं। वे हड्डियों को चबाये या साफ किये बिना केवल मांस खाते हैं, इसलिए गीदड़, लकड़बग्घा तथा गिद्धों के खाने के लिए काफी आहार बच जाता है।

चूंकि सिंह पेट भर कर खाते हैं अतः वे कुछ दिनों तक शिकार नहीं करते और न अपने विश्राम स्थल के समीप शिकार की उपस्थिति पर ही ध्यान देते हैं। सिंह साधारणतया मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता जब तक कि उसे चौंकाया या तंग नहीं किया जाये या वह घायल और बीमार न हो। बूढ़े सिंह मनुष्य का शिकार करने के लिये प्रसिद्ध हैं परंतु ऐसा कम ही होता है। अधिकतर बूढ़े सिंह शिकार करने के अयोग्य होने पर बिच्छू, कीट-पतंगों तथा छछूंदरों पर जीवित रहते हैं।

वयस्क सिंहों की कोई विशेष संगम ऋतु नहीं होती। जब मादा संगम के लिए तैयार होती है तब जोड़ा संगम करता है। 110 दिनों के गर्भकाल के पश्चात एक से लेकर छह धब्बेदार असहाय शावक (बच्चे) पैदा होते हैं। वे तेंदुआ, लकड़बग्घा व अन्य प्राणियों के आसानी से शिकार हो जाते हैं। इसलिए कई बच्चे जीवित नहीं रहते। जो जीवित रहते हैं वे शीघ्र बढ़ते हैं और प्रायः एक साल के होने पर अपना शिकार स्वयं करते हैं। दो वर्ष की आयु में ये वयस्क हो जाते हैं। सिंह 20 से 30 वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं परंतु वन में इस आयु तक वे कम ही पहुंच पाते हैं।

प्राकृतिक आवास के विनाश, शिकार तथा मानव हस्तक्षेप के कारण यह 'जंगल का राजा', बाघ को यह सम्मान दिए जाने से पहले तक भारत का राष्ट्रीय

प्राणी माना जाता था, लेकिन अब यह एक संकटग्रस्त प्राणी है। कठोर संरक्षण के कारण गुजरात के गीर वन में अब 200 से अधिक सिंह जीवित हैं। विभिन्न चिड़ियाघरों में कुछ सिंहों के अतिरिक्त गीर वन संसार में एशियाई सिंह का अंतिम शरणस्थल है।

तेंदुआ अथवा गुलदार
पेंथेरा पारडस (लिनेयस)

तेंदुआ सिंह और बाघ से कुछ छोटा होता है। स्तनधारियों में यह सबसे चुस्त, काफी निडर तथा तंग किये जाने या घिर जाने पर भयंकर युद्ध करने वाला प्राणी है। मरुस्थली क्षेत्रों या चट्टानी और पेड़-पौधों से रहित क्षेत्रों में रहने वाले तेंदुए बड़े आकार तथा पीले रंग के होते हैं। तेंदुए प्रायः 1 से 1.5 मीटर लंबे तथा लगभग 90 किलो वजन के होते हैं। जंगल के निचले इलाकों तथा पहाड़ी इलाकों में पाये जाने वाले तेंदुए साधारणतया छोटे होते हैं तथा उनकी त्वचा बड़े काले धब्बों व घेरों के डिजाइन वाली गहरे रंग की होती है। कुछ क्षेत्रों में तेंदुए काले रंग के होते हैं जिन्हें 'काला तेंदुआ' (ब्लैक पेंथर) कहते हैं। भारत में तेंदुए की त्वचा सुंदर, मुलायम पीली या भूरे रंग की होती है जिस पर छोटे-छोटे काले धब्बे बने होते हैं। तेंदुआ दिन में गुफा या मांद में अथवा घने पेड़ पर छिप कर रहता है। यह साधारणतया अकेला ही शिकार करता है, परंतु कभी-कभी दो तेंदुए भी शिकार की टोह में निकलते हैं।

तेंदुआ प्रायः पेड़ या पानी वाले स्थान के ऊपर चट्टानी झाड़ियों में छिप जाता है तथा वहीं से अपने शिकार पर टूट पड़ता है। यदि शिकार इतना बड़ा होता है कि एक समय में पूरा न खाया जा सके, तो यह लाश के अवशेष को पेड़ पर घसीट कर ले जाता है ताकि वह लकड़बग्घों से बचा रहे। तेंदुआ किसी भी प्राणी को मारकर खा सकता है जिनमें हिरण, मवेशी, बंदर, चूहे आदि कुतरने वाले प्राणी, पक्षी, सरीसृप आदि सम्मिलित हैं। बाघ तेंदुए का प्रमुख शत्रु है क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। सोनहे (जंगली कुत्ते) तथा लकड़बग्घे तेंदुए का वीरता से सामना करते हैं।

92 से 95 दिनों के गर्भधारण के बाद एक से चार (साधारणतया दो) बच्चे पैदा होते हैं। अपने जीवन के पहले छह महीनों तक वे मादा के साथ रहते हैं। तेंदुए प्राय· 20 वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं।

भारत में तेंदुए वनों, झाड़ियों से भरे जंगलों तथा मैदानों में पाये जाते हैं।

लमचित्ता अथवा बदली तेंदुआ
नियोफेलिस नेबुलोसा (ग्रिफिथ)

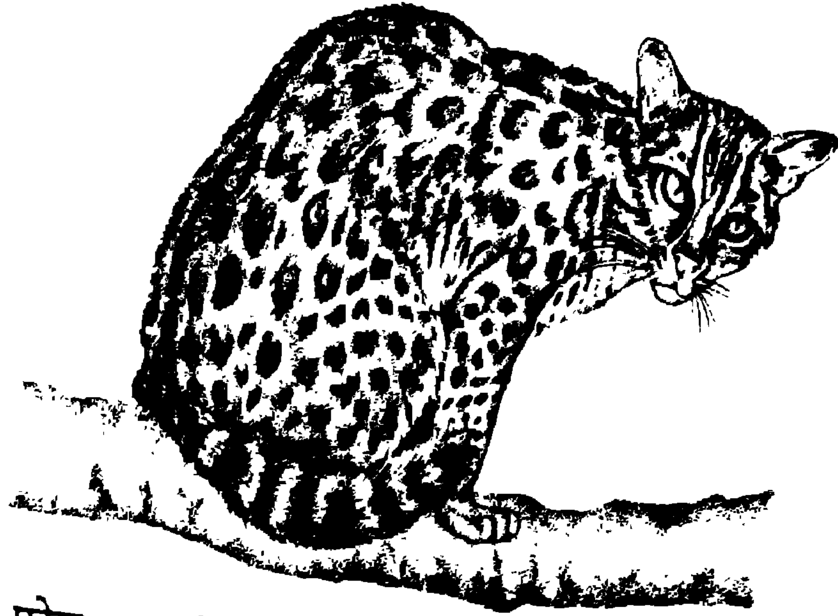
लमचित्ता साधारण तेंदुए से छोटा होता है परंतु इसकी पूंछ काफी लंबी होती है। इसकी मटियाले भूरे रंग की त्वचा पर गहरे या काले, बीच-बीच में पीले धब्बे होते हैं जो बादलों जैसे दिखायी देते हैं, इसलिए इसे बदली तेंदुआ भी कहते हैं। इसका सिर धब्बेदार होता है व चेहरे पर लकीरें होती हैं। हाथ-पैरों तथा निचले भागों पर बड़े काले अंडाकार धब्बे होते हैं और लंबी पूंछ पर भूरे रंग के अंगूठीनुमा निशान होते हैं।



लमचित्ता अथवा बदली तेंदुआ सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड तथा असम के पूर्वी भागों के घने सदाबहार वनों में पाया जाता है। स्वभाव से यह पेड़ों पर रहने वाला तथा रात्रिचर प्राणी है। साधारण तौर पर छोटे स्तनधारी जंतु, पक्षी और कुछ बड़े शाकाहारी प्राणी जैसे हिरण और बकरी भी इसका भोजन हैं।

तेंदुआ बिल्ली
फेलिस बेंगालेंसिस केर

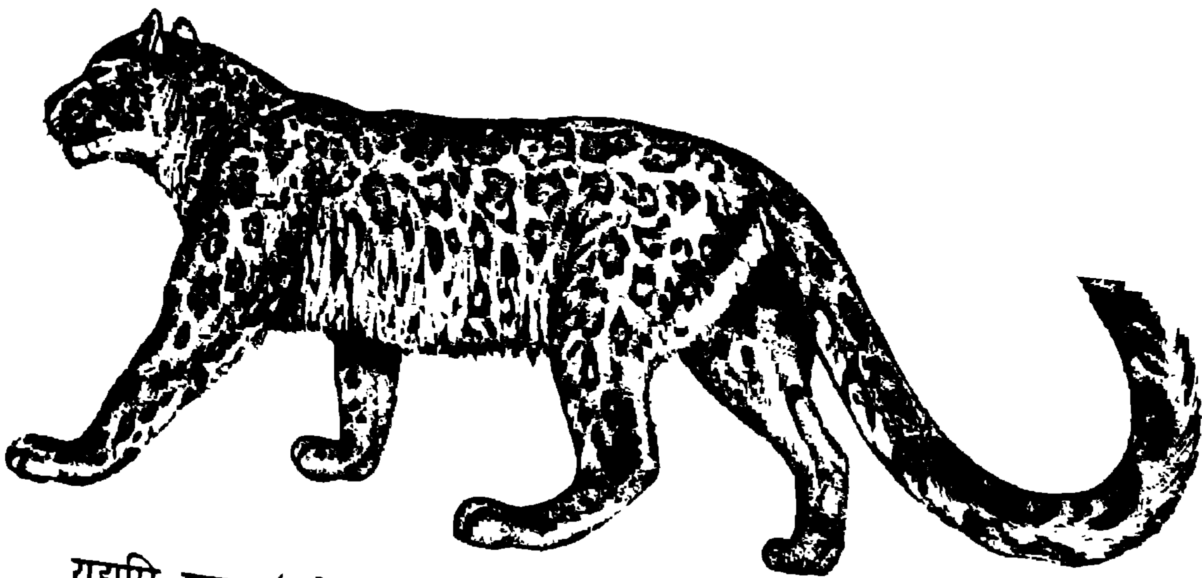
देखने में छोटे तेंदुए की भांति, लगभग घरेलू बिल्ली के आकार की लेपर्ड कैट अत्यंत आकर्षक प्राणियों में से एक है। इस बिल्ली की गेरूए धूसर रंग की खाल, भूरे, गेरूए तथा काले धब्बों और अन्य निशानों जो तेंदुओं की विशेषता है, से सजी हुई होती है। तेंदुआ बिल्ली वन्य जीवन के अनुकूल होती है तथा संपूर्ण भारत में पायी जाती है। वस्तियों के समीप वाले क्षेत्रों में यह प्रायः चोरी छिपे



मुर्गी तथा अन्य घरेलू जानवरों को उठाकर गायब हो जाती है। यह साधारणतया छोटे स्तनधारी जंतुओं तथा पक्षियों का भोजन करती है।

साह (स्नो लेपड)
पेंथेरा युंसिया (स्क्रेबेर)

तेंदुआ या गुलदार पेंथेरा पारडस (लिनेयस) जहां भारत में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों में पाया जाता है और अन्य संकटग्रस्त मांसाहारी प्राणियों के मुकाबले में कम संकटग्रस्त है, वहीं साह या स्नो लेपर्ड तथा लमचित्ता जैसी कुछ जातियां काफी संकटग्रस्त हैं।



यद्यपि साह (स्नो लेपड) तेंदुए से छोटा होता है, परंतु अपने लंबे बालों वाली त्वचा के कारण भारी दिखायी देता है। मोटे, कोमल तथा सुंदर फर वाली त्वचा, बर्फीले प्राकृतिक आवास के साथ मेल खाती हुई गुलाब के फूलों के गुच्छे जैसे पीले स्लेटी धब्बों से युक्त क्रीम सफेद रंग की होती है। साह हिमालय की पहाड़ियों पर 3000 मी. से 4000 मी. तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह

पहाड़ी बकरी, भेड़, साकिन (आइबेक्स), मारखोर, खरगोश आदि प्राणियों तथा पक्षियों का भी शिकार करता है।

सुनहरी बिल्ली

फेलिस टेमिन्की विगर्स एंड हौर्सफील्ड

घरेलू बिल्ली से थोड़ी बड़ी, सुनहरे भूरे रंग की त्वचा वाली सुनहरी बिल्ली (गोल्डन कैट) पूर्वी भारत में सिक्किम से असम तक पायी जाती है और घने वनों में रहती है। इस बिल्ली की एक विशेषता यह है कि इसकी नासिका क्षेत्र के ऊपर की ओर सफेद लकीरें होती हैं जो दोनों आंखों का बार्डर बनाती हैं तथा सफेद आड़ी धारियों का बार्डर काला होता है।



पालास बिल्ली

फेलिस मेनुल पालास

पालास बिल्ली घरेलू बिल्ली के आकार की होती है। इसकी पूंछ लंबी और झबरीली होती है जिसमें गहरे रंग के घेरे और आखिर में काला गुच्छा-सा होता है। इसके

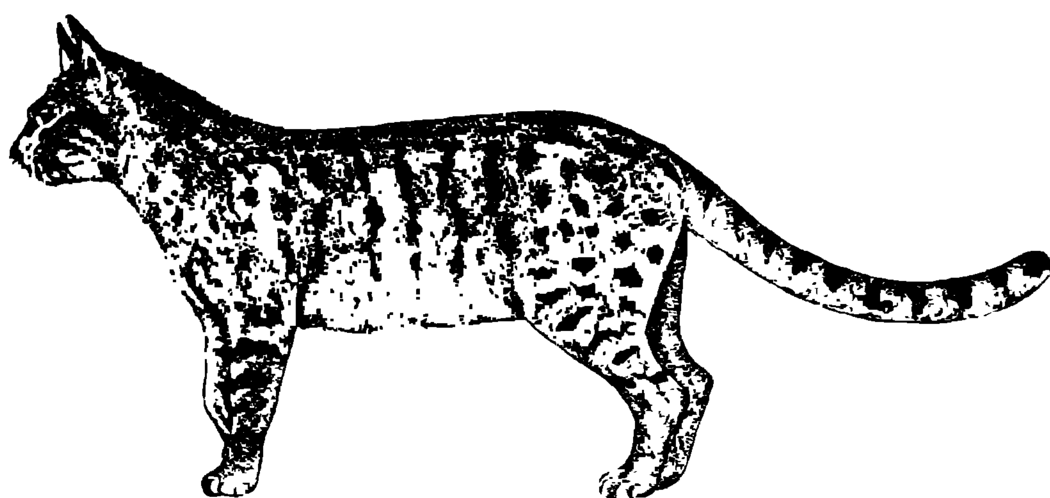


कान छोटे होते हैं और शरीर नर्म रजत सलेटी या पीला होता है, जिसके पिछले हिस्से पर विशिष्ट हल्की काली धारियां होती हैं और गालों पर भी एक जोड़ी धारियां होती हैं। इस बिल्ली की आवाज कुत्ते के पिल्ले तथा उल्लू की मिली-जुली आवाज जैसी सुनायी देती है।

यह बिल्ली लद्दाख और जम्मू एवं कश्मीर में पायी जाती है। यह चट्टानी क्षेत्रों में रहती है और छोटे स्तनधारी जंतुओं व पक्षियों का भोजन करती है। इसके शरीर का चट्टानी रंग प्राकृतिक आवास में बहुत अच्छी तरह से घुल-मिल जाता है।

भारतीय रेगिस्तानी बिल्ली
फेलिस सिल्वेस्ट्रिस ओर्नाटा ग्रे

भारतीय रेगिस्तानी बिल्ली आकार में घरेलू बिल्ली जैसी होती है। इसके पीले शरीर पर काले धब्बे होते हैं। इसकी पूंछ लंबी होती है जिसके आखिर के आधे हिस्से पर काले घेरे तथा दो आड़ी काली धारियां होती हैं।

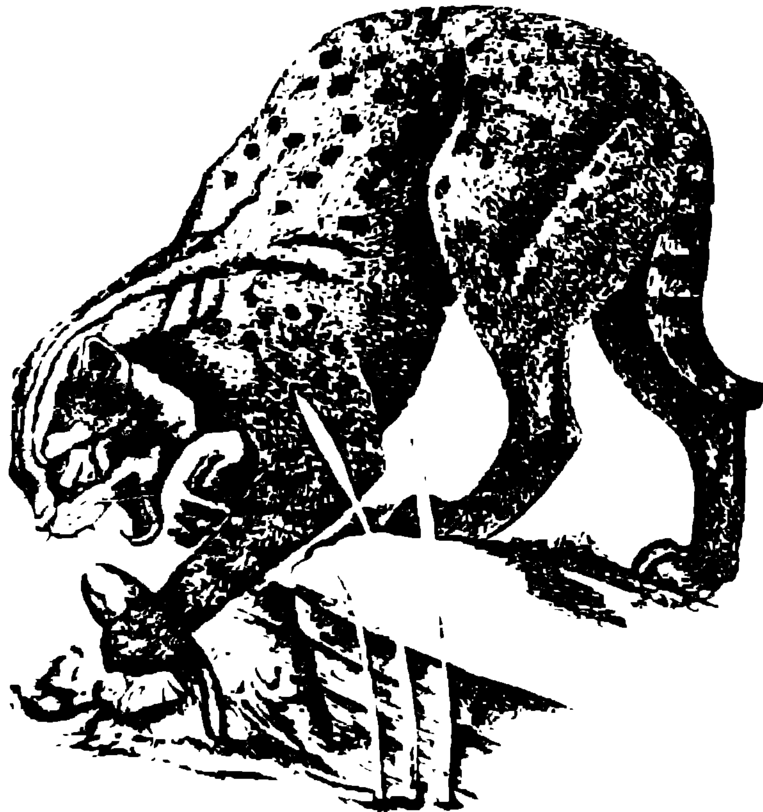


रेगिस्तानी बिल्ली पूरे राजस्थान, कच्छ और मध्य भारत के झाड़ी वाले जंगलों में पायी जाती है। अपनी सुंदर खाल के लिए बहुत अधिक शिकार के कारण यह दुर्लभ तथा संकटग्रस्त हो गयी है।

बाघदशा (फिशिंग कैट)
फेलिस विवेरिना बेनेट

बाघदशा या फिशिंग कैट छोटी बिल्लियों का एक और उदाहरण है जो अपनी त्वचा के लिए मारी जाती है। यह घरेलू बिल्ली से आकार में कुछ बड़ी होती है। इसके भूरे सलेटी रंग के शरीर पर गहरे धब्बे होते हैं और पूंछ छोटी होती

है। एक जोड़ी धारियां गालों पर और 6 से 8 काली लकीरें मस्तक पर होती हैं, जिससे इसे अन्य बिल्लियों से अलग पहचाना जा सकता है। दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण उंगलियों के बीच जालों की उपस्थिति है जो पानी में प्रवेश किये बिना ही मछली पकड़ने में सहायक होते हैं।



बाघदशा असम में नदी, नाले, कछार आदि के आसपास वाले जंगलों में, पश्चिम बंगाल के सुंदरवन, ओड़िसा में चिल्का लेक और केरल में रुके पानी वाले क्षेत्रों में रहती है।

खाल के लिए अंधाधुंध शिकार के कारण बाघदशा की संख्या काफी कम हो गयी है। एक फर कोट के लिए प्रायः बाघदशा की 30 से 35 खालें काम में आती हैं। इसकी संकटग्रस्त स्थिति का मुख्य कारण इसकी खाल का व्यापार ही माना जा सकता है।

सिकमार (मार्वल्ड कैट)
फेलिस मारमोरेटा चार्लटोनी ग्रे

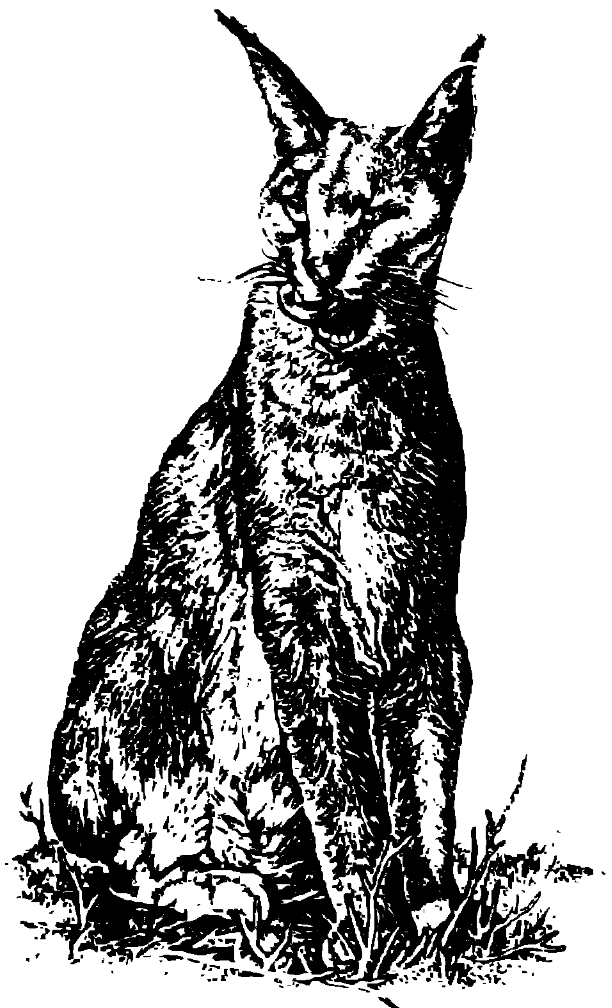
यह घरेलू बिल्ली से थोड़ी-सी बड़ी होती है। इसके शरीर का रंग और निशान लमचित्ता से मिलते-जुलते हैं। सिकमार ठंडी जलवायु के घने वनों में रहती है। इसकी पूंछ लंबी झबरीली होती है व शरीर का रंग भूरापन लिए सलेटी अथवा सुनहरा गेरूआ होता है जिस पर बड़े अनियमित धब्बे होते हैं जो लंबाई में अधिक या कम व्यवस्थित होने के कारण संगमरमर (मार्बल) जैसे लगते हैं।



सिकमार सिक्किम, दार्जिलिंग, नागालैंड तथा उत्तर-पूर्वी भारत के अन्य भागों में पायी जाती है। यह पक्षियों तथा छोटे स्तनधारियों का शिकार करती है।

स्याहगोश

फेलिस केराकल स्कीमिजी मेटशी

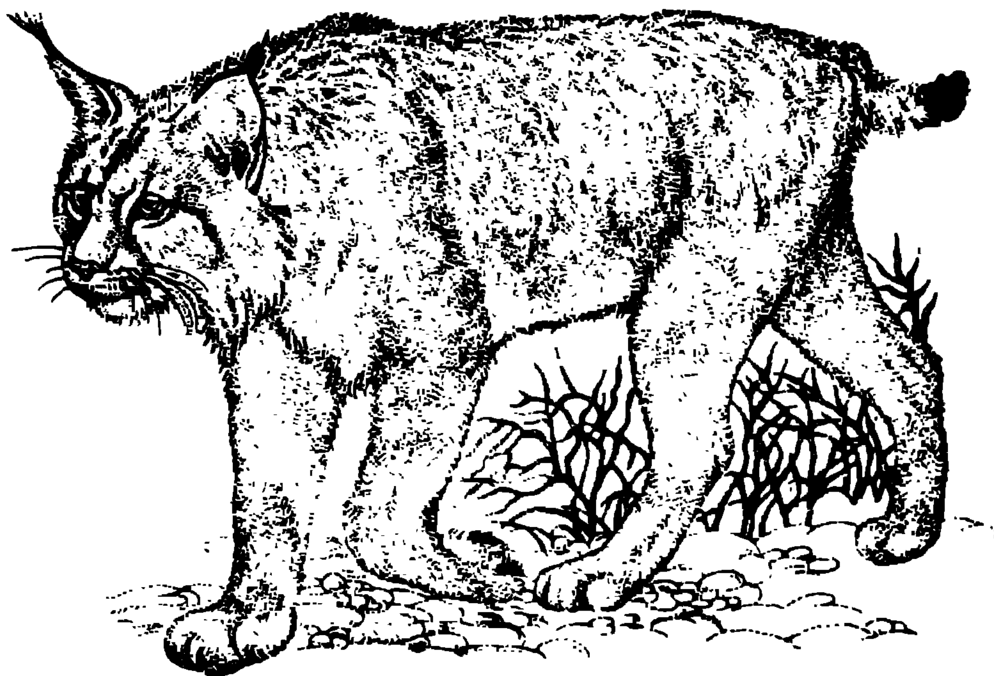


स्याहगोश या केराकल घरेलू बिल्ली से बड़ा होता है व इसके पैर लंबे, पूंछ छोटी तथा कान नुकीले और तिकोने होते हैं जिनके सिरे पर काले बालों का गुच्छा होता है। इसके शरीर का रंग समान रूप से लाल सलेटी लेकिन पेट की ओर मटमैला गुलाबी या सफेद होता है। यह मध्य और उत्तर पश्चिमी भारत के रेगिस्तानी व अर्ध रेगिस्तानी क्षेत्रों तथा झाड़ी वाले वनों में घूमता हुआ पाया जाता है। यह असाधारण तौर पर चुस्त होता है तथा उड़ते हुए पक्षी को भी उछल कर पकड़ने में सक्षम है। स्याहगोश विशेषतया छोटे स्तनधारियों तथा पक्षियों को खाता है।

वन बिलाव

फेलिस लिंक्स इसाबेलिना ब्लाइथ

वन बिलाव एक छोटी पूंछ वाली जंगली बिल्ली है जिसके पैर लंबे और पंजे बड़े होते हैं। पंजे बर्फ पर चलने के लिए गद्दीदार होते हैं। कानों पर बालों का एक बड़ा गुच्छा तथा चेहरे पर लंबी मूंछें होती हैं। शरीर का रंग हल्के भूरे रंग से लेकर सलेटी रंग तक का होता है जिस पर कभी-कभी गहरे भूरे रंग के धब्बे होते हैं जो विशेष रूप से पार्श्व तथा पैरों पर होते हैं।



वन बिलाव अधिक ऊंचाई के जंगलों में पाया जाता है जहां झाड़ियों, नरकुल और घास का घना आवरण हो। यह बड़े आकार की शक्तिशाली बिल्ली है जो पेड़ों पर चढ़ जाती है और भली प्रकार तैर सकती है, परंतु अपना शिकार जमीन पर करती है। यह पक्षियों और स्तनधारी जंतुओं, प्रायः भेड़-बकरियों का शिकार करती है। यह उत्तरी गोलार्ध का प्राणी है और उत्तरी अमेरिका, कनाडा और यूरोप के बड़े भू भागों में पाया जाता है। भारत में वन बिलाव जम्मू एवं कश्मीर क्षेत्र तक ही सीमित है।

वन बिलाव साधारणतया अकेले रहते हैं परंतु कभी-कभी कुछ वन बिलाव एक साथ घूमते या शिकार करते देखे गये हैं। इनमें संगम तब होता है जब सर्दियों का मौसम बीतने को होता है। वन बिलाव अपना निवास स्थान खोखले लट्ठे में या गिरे हुए पेड़ के रक्षा स्थल में या चट्टान के बाहर निकले हुए कगार के अंदर बनाता है। यहां मादा के दो से चार तक बच्चे पैदा होते हैं।

सुंदर फर के लिए इसका शिकार किया जाता है। इसी कारण वन बिलाव भारत में अत्यधिक दुर्लभ हो गया है।

श्वान कुल

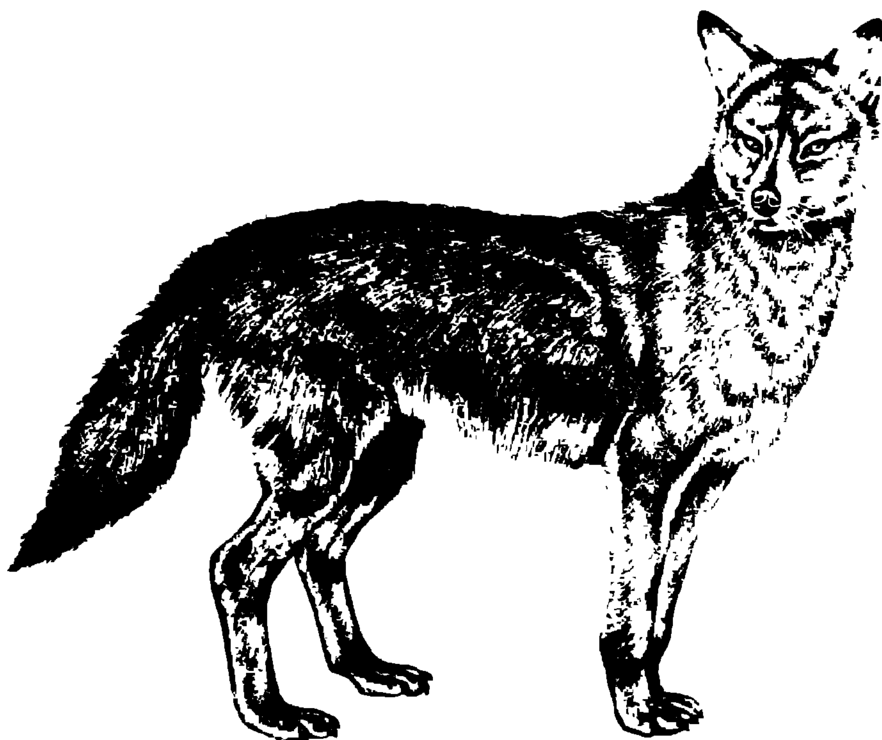
भेड़िया, गीदड़, लोमड़ी, घरेलू और जंगली कुत्ते श्वान कुल (केनिडी) के सदस्य हैं। इनका अच्छे आकार का सिर, लंबी नुकीली थूथन, बड़े तथा सीधे कान, गहरी छाती वाला सुगठित शरीर, झबरीली पूंछ और सीधे, न सिकुड़ने वाले पंजों से युक्त पतले पैर होते हैं। इनके शरीर की बनावट शिकार करने की जीवन शैली के अनुकूल है। इनमें से अधिकतर शिकारी हैं पर कुछ प्रकृति के सफाई कर्मचारी बन गये हैं। प्राकृतिक आवास के विनाश तथा मानव हस्तक्षेप के कारण श्वान कुल के कई सदस्य दुर्लभ तथा संकटग्रस्त हो गये हैं।

भेड़िया

केनिस लुपस लिनेयस

भारतीय भेड़िया प्रायः एलशेसियन कुत्ते जितना बड़ा होता है। इसका शरीर मटमैले भूरे रंग का होता है जिसमें कभी-कभी काला रंग भी मिला होता है। इसका चेहरा व हाथ-पैर लाल तथा पेट कुछ सफेद रंग का होता है। बड़ी खोपड़ी, लंबा और शक्तिशाली जबड़ा और उन्नत मस्तक इस प्राणी की अन्य विशेषताएं हैं।

भारत में भेड़िया प्रजाति के खास प्रतिनिधि दो छोटे प्राणी हैं—कश्मीर में हिमालय का ऊनी भेड़िया तथा भारतीय प्रायद्वीप का भेड़िया।

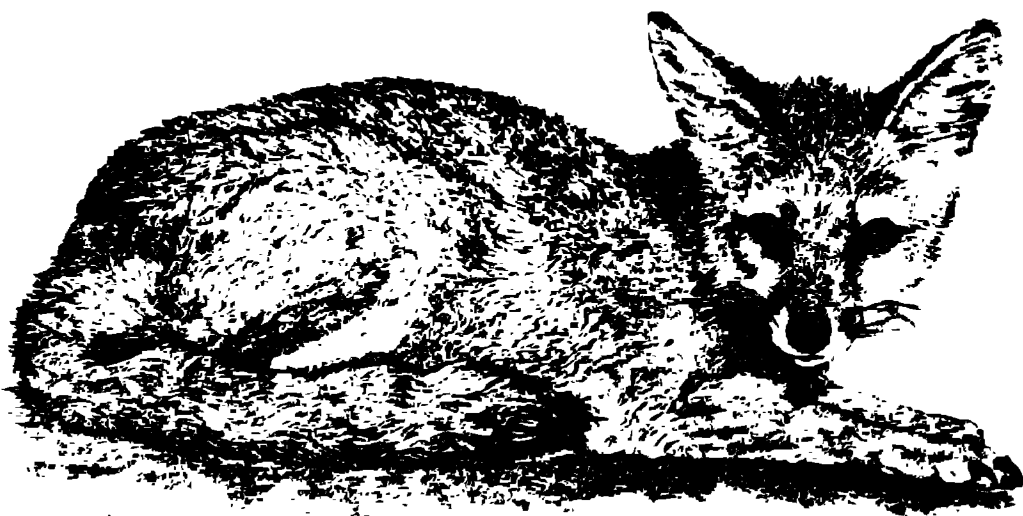


भेड़िया आदत से रात्रिचर है और हिरण, भेड़, बकरी और मुर्गियों का शिकार करता है। कभी संपूर्ण भारत में फैले इस प्राणी की संख्या में कुछ सालों से भारी कमी आ गयी है। भेड़ियों के छोटे-छोटे झुंड अब केवल महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान, बिहार और कच्छ की खाड़ी में पाये जाते हैं। प्रत्येक वर्ष प्रतिकूल परिस्थितियों में भेड़िये के जीवित रहने के अवसर और भी कम हो जाते हैं। अभी तक भेड़िये नष्ट होने से सफलतापूर्वक बच सके उसका एक कारण यह है कि उनका भोजन विभिन्न प्रकार का है तथा दूसरा कारण उनकी उच्च जन्म दर है। मादा भेड़िया एक समय में छह से लेकर दस बच्चों को जन्म देती है और उनको ध्यानपूर्वक पालती है जिससे कई बच्चे जीवित रहते हैं। भेड़िये इसलिए भी जीवित रहते हैं क्योंकि उनका सामाजिक संगठन काफी मजबूत होता है। वे अधिकतर झुंडों में शिकार करते हैं जो उनके प्रमुख सदस्यों द्वारा संचालित होते हैं। जीवन शैली काफी अनुकूल होते हुए भी भेड़ियों की कई जातियां गंभीर रूप से संकटग्रस्त हैं। भारत में भेड़ियों का मनुष्यों की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में इस भ्रांति के कारण अधिक शिकार किया जाता है कि वे बच्चों को उठा ले जाते हैं।

भारतीय लोमड़ी

वेल्पेस बेन्गालेन्सिस (शा)

प्रायः परी कथाओं तथा कल्पित कहानियों में लोमड़ी का वर्णन चालाक तथा चतुर प्राणी के रूप में किया जाता है। यह अपने शत्रुओं को धोखा देकर बच निकलने



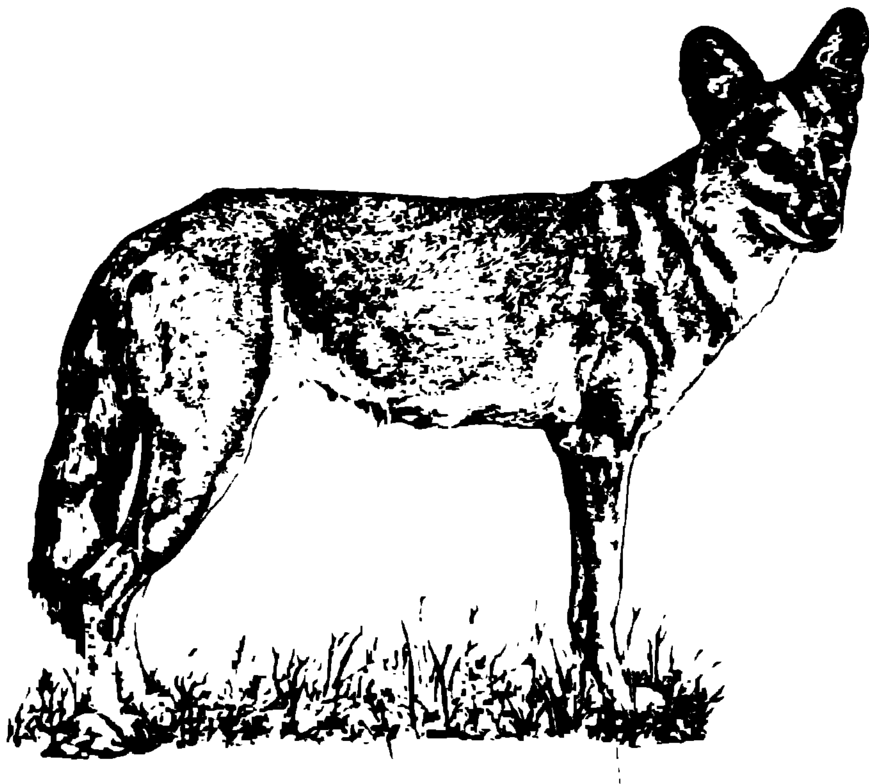
तथा शिकार को खोज निकालने में बहुत कुशल होती है। यह रात्रिचर प्राणी है। दिन में यह सोती रहती है और रात में अकेले या जोड़े में शिकार करती है। लोमड़ी आवाज और सूंघने की भाषा से अन्य लोमड़ियों से संपर्क स्थापित

करती है।

भारतीय लोमड़ी पतले हाथ-पैरों वाली और सलेटी रंग की होती है जिसकी पूंछ का सिरा काला और कान तिकोने होते हैं। उत्तर पश्चिमी सीमांत को छोड़कर यह संपूर्ण भारत में पायी जाती है तथा झाड़ियों और खेतों में रहती है। लोमड़ी, चूहे, सरीसृप, केकड़े, दीमकों के साथ-साथ फल भी खाती है। खाल और मांस के लिए इसका शिकार होने तथा खेतों में कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग ने इसकी संख्या काफी कम कर दी है।

भारतीय जंगली कुत्ता (सोनहा)
कूओन ऐल्पाइनस (पालास)

भारतीय जंगली कुत्ता 'सोनहा' घरेलू कुत्ते से काफी मिलता-जुलता है। सोनहा का पेट पीलापन लिए सफेद रंग का होता है तथा बाकी शरीर समान रूप से लाल रंग का होता है। इसकी पूंछ छोटी होती है जिसके अंत में सलेटी और काले बालों का गुच्छा होता है।



सोनहा अलग-अलग परिवारों वाले झुंडों में रहता है पर कई मौकों पर कुछ परिवार मिलकर बड़े जानवरों पर आक्रमण करते हैं। यह सांभर, नीलगाय, चीतल, काले हिरण और सूअर आदि का शिकार करता है। सोनहे अपनी संख्या की शक्ति से बाइसन, तेंदुए तथा बाघ पर भी आक्रमण करने में समर्थ होते हैं।

भालू

भालुओं के अनेक संबंधी हैं जिनमें कई बड़े तथा जमीन पर रहने वाले मांसाहारी प्राणी, कुछ छोटे आकार के जैसे पेड़ों पर रहने वाले रेकून आदि हैं। सभी भालू घने लंबे फर तथा ठूंठ जैसी पूंछ वाले होते हैं। इनका अस्थि-पंजर बहुत बड़ा होता है। इनके हाथ-पैर मजबूत होते हैं और खोदने तथा लड़ने के लिए शक्तिशाली पंजे होते हैं। भालू पैर रगड़कर चलता है। यह तलवों के बल चलता है अर्थात् इसके पैर का तला जमीन पर पड़ता है जिससे मनुष्य की तरह पैरों का निशान बन जाता है।

भालू साधारण तौर पर धीमी चाल वाले प्राणी हैं पर वे कभी-कभी बेढंगी दौड़ लगा लेते हैं। काला भालू 40 कि. मी. प्रति घंटे की गति से दौड़ सकता है। बड़े भूरे भालू की चाल असामान्य होती है। यह पहले एक तरफ की दोनों टांगें उठाकर एक साथ आगे बढ़ाता है फिर दूसरी ओर की दोनों टांगें बढ़ाता है। भूरा भालू प्रायः दो किलोमीटर तक सीधी ढलान पर बिना रुके दौड़ लेता है।

भालू की उपस्थिति का पता कथित 'भालू वाले वृक्षों' से लग जाता है। प्रायः भालू के रास्ते में उपस्थित ऐसे वृक्षों को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। पेड़ पर भालू जिस जगह स्वयं को रगड़ता है वह स्थान सपाट होता है तथा जहां भोलू ने छाल पर पंजा मारा होता है वहां खुरदरे घाव हो जाते हैं। छाल पर पंजा मारने से जो रस निकलता है, उस पर इसके बाल चिपक जाते हैं। कभी-कभी यह वृक्षों से छाल हटा कर लकड़ी का गूदा निकाल लेता है। जहां से गूदा निकलता है वहां उसके दांतों के निशान होते हैं।

भोजन के चिह्नों द्वारा भी इनकी उपस्थिति का पता लगता है। गिलहरी के खोदे गये बिल और चींटियों के खाली किये गये बिलों से मालूम होता है कि भालू ने क्या खाया और किसका शिकार किया। उलटे तथा टूटे हुए लट्ठे और लुढ़की हुई चट्टानें इस बात की सूचक हैं कि भालू ने चींटियों और बीटलों की खोज की है। कुछ उखाड़े हुए पौधों से मालूम होता है कि भालू ने जड़ों के लिए इन्हें खोदा है। जिन पेड़ों के कोटरों में मधुमक्खियां रहती हैं उन्हें भालू शहद और छत्ता दोनों के लिए तहस-नहस कर देता है। भालू बचे हुए भोजन को कचरे से ढंक देता है। इस तरह के स्थान को देखकर यह मालूम हो जाता है कि उस क्षेत्र में भालू है।

हिमालय का भूरा भालू
उरमस आर्कटोस इसाबेलिनस हौर्सफील्ड

हिमालय के भूरे भालू की विशेषता यह है कि इसकी भूरी खाल सर्दियों में मोटी और घनी हो जाती है तथा गर्मियों में छोटी और गहरी हो जाती है। रंग में हल्का सा अंतर होता है जैसे भूरा, ललाई लिए भूरा तथा सलेटी। यह भालू हिमालय के उत्तर पश्चिमी तथा मध्य क्षेत्रों में पेड़ों की सीमा रेखा से ऊपर, बर्फ के समीप काफी ऊंचाइयों पर पाया जाता है। यह जंगली फल, चूहे, कीट तथा कभी-कभी बड़े प्राणियों को खाता है।

रीछ (स्लोथ बीयर)
मेलुर्सस उर्सिनस (शा)

रीछ के बाल लंबे, खुरदरे और घने होते हैं और इसकी छाती पर 'V' के आकार का सफेद निशान होता है। इसका मस्तक चौड़ा और थूथन लंबी होती है जिससे इसका चेहरा देखने में तिकोना लगता है। इसकी चपटे पैरों वाली टांगें झुकी हुई होती हैं। पैरों के अंत में लंबे सफेद पंजे होते हैं। इसके पैरों के निशान मनुष्य के पैरों के निशानों के समान होते हैं। रीछ संपूर्ण भारत में चट्टानी इलाकों तथा जल स्रोतों के समीप वाले वनों में पाये जाते हैं। यह स्वभाव से रात्रिचर है तथा फल, फूल, कंदमूल, शहद, दीमक, पक्षी, अंडे इत्यादि खाता है।

मुश्क बिलाव (सिवेट)

मुश्क बिलाव 'विवेरिडी' कुल के प्राणी हैं। बिल्लियां इनकी निकटतम संबंधी मानी जा सकती हैं। मुश्क बिलाव का शरीर लंबा, हाथ-पैर छोटे, सिर लंबा तथा मुंह नुकीला होता है। इसकी आंखें तेज होती हैं तथा सूंघने व सुनने की शक्ति तीव्र होती है। मुश्क बिलाव पूर्ण रूप से मांसाहारी नहीं होते, वे शाकाहारी भोजन भी करते हैं।

मालाबार मुश्क बिलाव
विवेरा मेगास्पिला ब्लाइथ

लगभग बड़े नेवले के आकार के मालाबार मुश्क बिलाव का शरीर पीले रंग का होता है जिसके पिछले भाग पर बड़े तथा गहरे धब्बे होते हैं। इसकी पूंछ पर

छह काले घेरे होते हैं और उनके बीच का भाग पीले रंग का होता है। गर्दन पर सभी ओर कालर की तरह कुछ काले निशान होते हैं। पैरों की उंगलियों के बीच जाल बने होते हैं। मालाबार मुश्क बिलाव की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी पीठ पर काले सीधे खड़े बालों की एक कलगी होती है जो कंधे से पूंछ तक की संपूर्ण लंबाई में फैली हुई होती है। यह छोटे स्तनधारी प्राणियों तथा पक्षियों को खाता है और मुर्गियों का काल समझा जाता है।

मालाबार मुश्क बिलाव कभी केरल के तटवर्ती क्षेत्रों में, विशेष रूप से मालाबार क्षेत्र में काफी पाये जाते थे, पर अब दुर्लभ हैं।

स्पॉटेड लिनसेंग

प्रियोनोडॉन पार्डीकलर होग्सन

इसके लंबे शरीर पर हल्के रंग के छोटे फर के बीच-बीच में गहरे धब्बे फैले होते हैं। लिनसेंग पेड़ों पर कुशलतापूर्वक चढ़ने वाला चतुर शिकारी प्राणी है। इसका सिर नुकीला, हाथ-पैर छोटे तथा पूंछ छोटी होती है जिसमें आठ से लेकर दस तक गहरे रंग के घेरे होते हैं। शरीर पर धब्बे लंबी कतारों में क्रमबद्ध होते हैं जो गर्दन तथा पैरों के निचले भाग में अविभक्त धारियों जैसे प्रतीत होते हैं।



स्पॉटेड लिनसेंग पहाड़ी क्षेत्रों में, और मध्य तथा पूर्वी हिमालय के जंगलों में पाया जाता है। यह कीटों, पक्षियों तथा छोटे स्तनधारियों को खाता है। यह भूमि पर पेट के बल रेंग कर अपने शिकार पर आक्रमण करता है। चूंकि यह बहुत पतला होता है, इसलिए इसे गलती से प्रायः भारी शरीर वाला जहरीला सर्प समझ लिया जाता है।

बिंटूरोंग या भालू बिल्ली
आर्कटिक्टिस बिंटूरोंग (रेफल्स)

बिल्ली कुल के अन्य सदस्यों से भिन्न बिंटूरोंग की खाल पर भालू के समान लंबे रूखे बाल होते हैं। इसलिए इसका नाम 'भालू बिल्ली' पड़ गया है। यह लगभग 2000 मीटर की ऊंचाई वाले घने जंगलों में रहता है। इस प्राणी का काला फर सफेद धूमिल रंग के बालों के साथ भूरा दिखायी देता है। इसके छोटे कानों के ऊपर बालों के लंबे गुच्छे दिखायी देते हैं। इसके दांत अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

बिंटूरोंग स्वभाव से वृक्षों पर रहने वाला प्राणी है और इसकी लंबी घनी पूंछ पेड़ की शाखाओं को पकड़ने के लिए एक अतिरिक्त हाथ का काम करती है। यह स्वभाव से रात्रिचर है और अपनी घनी पूंछ के अंदर सिर रखकर पेड़ के कोटरों में सिमट कर दिन का समय बिता देता है। यह रात होने पर खाने की खोज में बाहर निकलता है। इसके थोड़े खुले हुए होठों से हवा बाहर निकलती है जिससे एक प्रकार की सिसकारी जैसी आवाज होती है।



बिंटूरोंग असम और सिक्किम के जंगलों में पाया जाता है। यह घने जंगल में पेड़ों की फुनगियों में धीरे-धीरें और कुशलतापूर्वक घूमता रहता है। यह छोटे स्तनधारी जंतु, पक्षी, मछली, कीड़े-मकोड़े और फल खाता है।

लाल पांडा
ऐलुरस फुल्गन्स एफ. कुवियर

लाल पांडा अथवा छोटा पांडा वृक्षों पर रहने वाला प्राणी है जो स्वभाव से रात्रिचर है। भालू कुल के निकट संबंधी और बिल्ली जैसे इस प्राणी की सुंदर ऊनी खाल चमकीले लाल भूरे रंग की होती है। सिर गोल और चेहरा सफेद होता है। इसकी

झबरीली पूंछ गेरूए लाल रंग के हल्के और गहरे शेड के घेरे वाली होती है जिसका सिरा काले रंग का होता है।

लाल पांडा भूमि पर धीमे चलता है परंतु पेड़ पर चढ़ने में बहुत कुशल है। लाल पांडा हिमालय क्षेत्र, नेपाल, सिक्किम, ऊपरी म्यांमार तथा दक्षिणी चीन में पाया जाता है। यह बांस के प्ररोह, फल, जड़ें, कीट, पक्षियों के अंडे तथा कभी-कभी छोटे प्राणियों को खाता है, परंतु बंदी अवस्था में यह रोटी, दूध, अंडे और छोटे पक्षी खा लेता है। यह बिल्ली की तरह फुफकारता है, भालू की तरह गुर्राता है और कभी-कभी कुत्ते की तरह लपलपाता है। साधारण तौर पर यह अपना थूथन पानी में डालता है और भालू की तरह चूस कर पानी पीता है। पांडा बिल्ली की तरह अपने पंजों को थोड़ा सिकोड़ सकता है।

साल (भारतीय पेंगोलिन)
मैनिस क्रेसीकौडेटा ग्रे

साल को पेंगोलिन या शल्की चींटाखोर भी कहते हैं। ये अजीब किस्म के प्राणी हैं। साल की विशेषता है कि इसके शरीर पर बड़े-बड़े, एक-दूसरे पर चढ़े हुए शल्क होते हैं जो रक्षा कवच की भांति कार्य करते हैं। ऐसे शल्क अन्य स्तनधारियों में नहीं होते। ये शल्क बालों या कांटों के रूपांतर समझे जाते हैं जो शल्क के रूप में चपटे हो गये हैं। शरीर के निचले भाग में कुछ कड़े बाल होते हैं जो शल्कों के बीच में दिखायी देते हैं। साल की दूसरी विलक्षणता छेड़े जाने पर अपने आपको एक कवचीय गेंद के रूप में संकुचित करने की क्षमता है। यह अत्यधिक मांसलशक्ति वाला प्राणी है व इस तरह गेंद की स्थिति में होने पर इसे खोलना बहुत कठिन है।

साल चींटियों और दीमकों को अपने लंबे भोथरे नखों से खोदकर खाता है, जो उसके आगे के पैरों की उंगलियों से भी अधिक लंबे दिखायी देते हैं। ये साधारणतया बिलों में रहते हैं, परंतु चढ़ने में कुशल होने के कारण पेड़ों पर चींटियों की खोज में घूमते रहते हैं। पूंछ को मोड़ कर यह मजबूती से पेड़ को पकड़ सकता है। इससे पेड़ों पर चढ़ने में मदद मिलती है। साल (भारतीय पेंगोलिन) हिमालय के मैदानों तथा निचले ढलानों में पाया जाता है। साल की एक अन्य जाति चीनी पेंगोलिन—मैनिस पेंटाडेक्टाइला औरिटा होग्सन—असम और पूर्वी हिमालय में पायी जाती है। प्राकृतिक आवास के विनाश तथा दवाइयों के लिए शिकार होने से इनकी आबादी बहुत कम हो गयी है।

शाकाहारी प्राणी

भारत में रहने वाले शाकाहारी प्राणियों की संख्या काफी बड़ी है जिसमें हाथी, गैंडे, याक, भैंस तथा कई प्रकार के हिरण सम्मिलित हैं। आकार प्रकार में भिन्न-भिन्न, ये प्राणी विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों में रहते हैं तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां खाते हैं। इनके दांत शाकाहारी भोजन के उपयुक्त हैं तथा इनकी पाचन प्रणाली भोजन शैली के अनुकूल है।

एशियाई हाथी

एलिफेस मेक्सिमस (लिनेयस)

हाथी जमीन पर रहने वाले समस्त प्राणियों में सबसे बड़ा है जो केवल अफ्रीका और भारत में पाया जाता है। संसार के समस्त जीवित प्राणियों में केवल व्हेल इससे बड़ी है। हाथी की विशेषता उसकी लंबी सूंड है जो ऊपरी होंठ का ही बढ़ा हुआ भाग है। सूंड एक शक्तिशाली मांसल अंग है। इसके पूर्वजों में सूअर के समान अत्यधिक लंबी थूथन थी जो हाथी में सूंड बन गयी। सूंड वस्तुओं को पकड़ने में सक्षम है। सूंड के कुशल प्रयोग में जो मांसपेशियां काम आती हैं वे अधिकतर चेहरे की उन मांसपेशियों से उत्पन्न हुई हैं जिनका प्रयोग अन्य स्तनधारियों में नाक को इधर-उधर घुमाने में होता है। परिणामस्वरूप आधुनिक हाथी की सूंड न केवल जमीन पर पहुंच सकती है बल्कि आगे, पीछे, ऊपर, नीचे सभी तरफ घुमायी जा सकती है।

हाथी अपनी सूंड से कई कार्य कर सकता है। यह इसका प्रयोग पानी खींचने में करता है। हालांकि प्रचलित मत के विरुद्ध यह वास्तव में सूंड से पानी नहीं पीता है, पानी सूंड से खींचता है तथा मुंह में छिड़क लेता है। सूंड मुंह में खाना ले जाने के काम में आती है। इस उपयोगी अंग की मदद से हाथी जमीन तथा अपने सिर के ऊपर वाले पेड़-पौधों को खा सकता है। इस बड़े प्राणी के प्रिय भोजन में पेड़ों की ऊंची शाखों की नर्म टहनियां तथा शाखाएं हैं। कई बार टहनियां बहुत ऊंची होती हैं जहां सूंड भी नहीं पहुंच सकती। ऐसी स्थिति में यह अपने खाने की समस्या अत्यंत आसान तरीके से सुलझाता है। यह अपने सिर से धक्का मार कर पेड़ को गिरा देता है।

हाथी की सूंड एक प्रकार से पांचवें हाथ-पैर की भांति प्रयुक्त होती है, जो अत्यंत शक्तिशाली भी है। हाथी इसके द्वारा 400 से 500 कि. ग्रा. बोझा उठा

सकता है। लेकिन यह अपनी सूंड पर भारी बोझा नहीं ढोता। सूंड से भारी लट्ठा उठाकर हाथी अपने दांतों पर ठीक स्थिति में रख लेता है और सूंड से उसे उस स्थान पर पकड़े रहता है।

हाथी की सूंड मजबूत होने के साथ-साथ नाजुक कार्य करने के योग्य भी है। हाथी की सूंड के अंत में एक या दो खंड होते हैं जिनका वह अत्यंत कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकता है। सूंड का खंड स्पर्श के लिए अत्यंत संवेदनशील अंग है। सूंड हाथी के सूंघने के अंग के रूप में प्रयुक्त होती है तथा हाथी काफी हद तक अपनी घ्राण या सूंघने की शक्ति पर निर्भर करता है। प्राणी साम्राज्य में घ्राण शक्ति बहुत तीव्र होती है। इस घ्राण शक्ति से हाथी को अपने आसपास की गतिविधि का ज्ञान रहता है। आसपास के स्थान की हवा में सूंघने तथा वस्तुओं का निरीक्षण करने के लिए सूंड निरंतर गतिशील रहती है।

हाथी खानाबदोश होते हैं। वे प्रायः एक बूढ़ी हथिनी के संरक्षण में कई दर्जन या उससे भी अधिक के झुंडों में घूमते हैं। इनका भोजन केवल शाकाहार है। झुंड एक स्थान से दूसरे स्थान पर चारे की खोज में घूमते हैं। ये विशाल प्राणी एक कतार में प्रायः दस कि.मी. प्रति घंटे की गति से धीरे-धीरे चलते हैं।

वर्ष के किसी समय, अफ्रीकी और एशियाई नर हाथी उत्तेजित अवस्था में होते हैं जिसे 'मस्त' कहा जाता है। ऐसे समय में आंखों के समीप वाली ग्रंथियों से एक तीव्र गंधयुक्त तरल पदार्थ निकलता है और प्राणी इस समय बदमिजाज और उत्तेजित दिखायी देता है। यद्यपि 'मस्त' का ठीक अर्थ नहीं मालूम, इसका संबंध सेक्स से माना जाता है। हाथी सामान्य दिनों की बजाय 'मस्त' के समय अधिक बार संसर्ग करते हैं, पर वे किसी भी समय संसर्ग कर सकते हैं। गर्भकाल प्रायः 21 महीने का होता है। मादा प्रत्येक बार एक बच्चे का जन्म देती है। प्रायः बच्चे के जन्म के पहले और बच्चे को जन्म देते समय अन्य हथिनियां उसकी सहायता करती हैं जिन्हें म्यांमार के लोग 'आंटियां' कहते हैं।

हाथी का बच्चा एक मीटर लंबा, प्रायः 100 किलो वजन का होता है और जन्म के समय बालों से ढंका होता है। बच्चे मां के अगली टांगों के बीच स्थित स्तनों के एकमात्र जोड़े से दूध पीते हैं। अफ्रीकी हाथी कुछ अधिक लंबे और भारी होते हैं। उनके कान भारतीय हाथी के कानों से बड़े होते हैं। भारतीय हाथियों में हाथी दांत केवल नर में ही भली-भांति विकसित होते हैं। हाथी दांत हथियार का काम भी करते हैं।

हाथी घास, झाड़ियां, जड़ें, पत्तियां और डालियां खाता है। भारतीय हाथी साधारणतया पहाड़ी क्षेत्रों में रहता है जहां बांस और ऊंची घास काफी होती है।

वयस्क हाथी एक दिन में प्रायः 150 किलो तक खाना खा सकता है तथा 8 से 10 फुट ऊंचाई का होता है। इसका वजन 5 टन (लगभग 4700 कि.ग्रा.) होता है।

मनुष्य द्वारा हजारों साल से हाथी लट्ठे उठाने के कार्य के लिए प्रशिक्षित किये जाते रहे हैं और आज भी लट्ठे उठाने और ढोने में इस्तेमाल होते हैं। कुछ हाथी सरकस में भाग लेने के लिए प्रशिक्षित किए जाते हैं। हाथी दांत के लिए अवैध शिकार से भारतीय हाथी की आबादी कम हो गयी है। आजकल ये केरल, कर्नाटक, ओड़िसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम के वन्य जीव अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों में संरक्षित हैं। हाथियों की रक्षा के लिए एक विशेष 'हाथी परियोजना' विचाराधीन है।

एक सींग वाला विशाल गैंडा
राइनोसेरॉस यूनिकोर्निस लिनेयस

इस समय संसार में गैंडे की पांच जातियों में से भारत और नेपाल में पाया जाने वाला एक सींग वाला विशाल गैंडा सर्वाधिक संकटग्रस्त प्राणी है। अमेरिका का काला और सफेद गैंडा, सुमात्रा का गैंडा और एक सींग वाला छोटा गैंडा या जावा का गैंडा इसकी अन्य जीवित जातियां हैं।



हाथी के बाद एक सींग वाला विशाल गैंडा आकार में जमीन पर रहने वाले स्तनधारियों में सबसे बड़ा है। इसकी ऊंचाई 6 फुट, लंबाई 12 फुट तथा वजन 2 टन तक होता है। इसकी काली सलेटी खाल की भारी-भारी परतें होती हैं जो कवच की पट्टियों जैसी दिखायी देती हैं। कंधों, जांघों और कूल्हों पर गांठें होती हैं। नर-मादा दोनों का एक-एक सींग होता है जो नाक के क्षेत्र में खाल से विकसित होता है और लंबाई में 2 फुट तक बढ़ सकता है। सींग किरेटिन

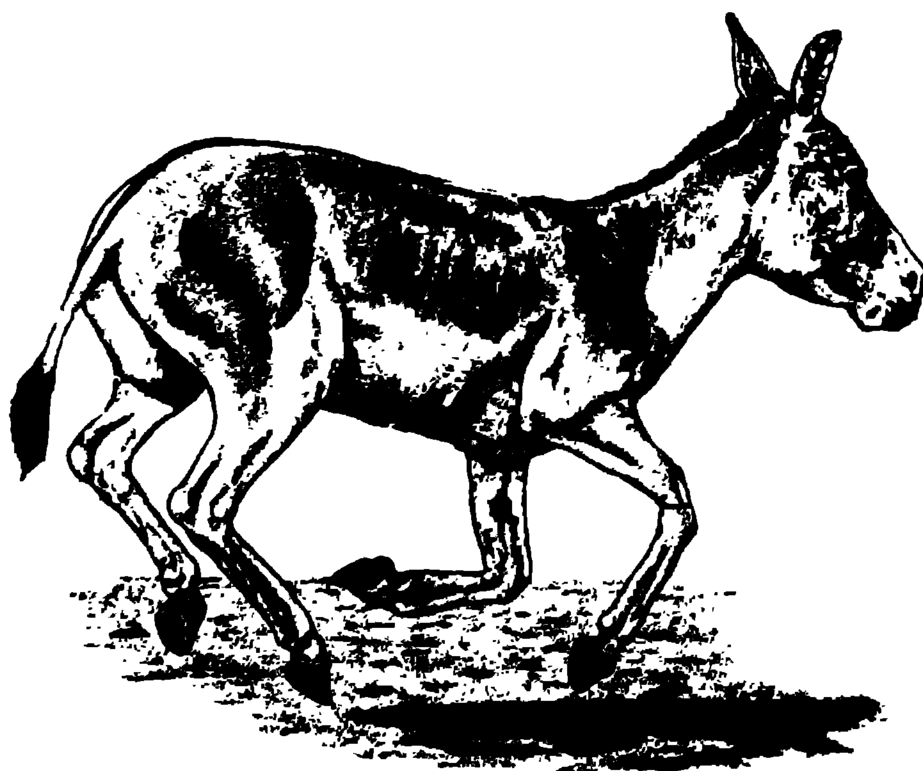
का बना होता है जो बालों का ही परिवर्तित रूप है। प्रचलित धारणा के विपरीत इसमें औषधीय व कामोद्दीपक गुण नहीं होते। इस गलत धारणा के कारण सींग के लिए बड़े पैमाने पर अवैध शिकार से इसकी आबादी काफी कम हो गयी है।

भारतीय गैंडा, जो कभी सिंधु घाटी से लेकर उत्तरी म्यांमार तक पाया जाता था, अब केवल असम में ब्रह्मपुत्र घाटी, पश्चिम बंगाल के दो छोटे आश्रय स्थलों तथा नेपाल तराई की चितवन घाटी क्षेत्र में मिलता है। आज जो 1,950 से कुछ अधिक गैंडे जीवित हैं, उनमें से लगभग 1,250 काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान में तथा 400 के करीब नेपाल में हैं। गैंडे एकाकी प्राणी हैं। ये अधिकतर समय पानी में लोटते रहते हैं और मुख्य रूप से जलीय पौधे, घास तथा झाड़ियां खाते हैं।

वनोन्मूलन, प्राकृतिक आवास के विनाश, मवेशियों और पालतू भैसों के बड़े झुंडों का इनके चरागाह मैदानों में अनधिकृत प्रवेश और सींगों के लिए अवैध शिकार गैंडों की संख्या घटने के प्रमुख कारण हैं। गैंडों की रक्षा के लिए कठोर कदम उठाने तथा जहां वे पहले हुआ करते थे वहां के नये स्थानों में पुनः उनकी संख्या बढ़ाने के प्रयास ने उनके संरक्षण की आशा जागृत की है। दुधवा राष्ट्रीय उद्यान में गैंडों को पुनः बसाया गया है जहां वे जीवित हैं।

एशियाई जंगली गधा (गोखर)
एसिनस हेमियोनस खुर (लेसन)

एशियाई जंगली गधा 'गोखर' घोड़े से छोटा परंतु पालतू गधे से बड़ा होता है। जंगली गधे का रंग सलेटी से लेकर गहरा भूरा तक होता है। पेट का निचला



हिस्सा सफेद होता है। इसके कान काले सिरे वाले तथा नुकीले होते हैं जो सिर पर सीधे खड़े रहते हैं। गहरे भूरे रंग की अयाल से बनी एक गहरी लकीर होती है जो इसकी पीठ से लेकर गुच्छेदार पूंछ तक चलती है।

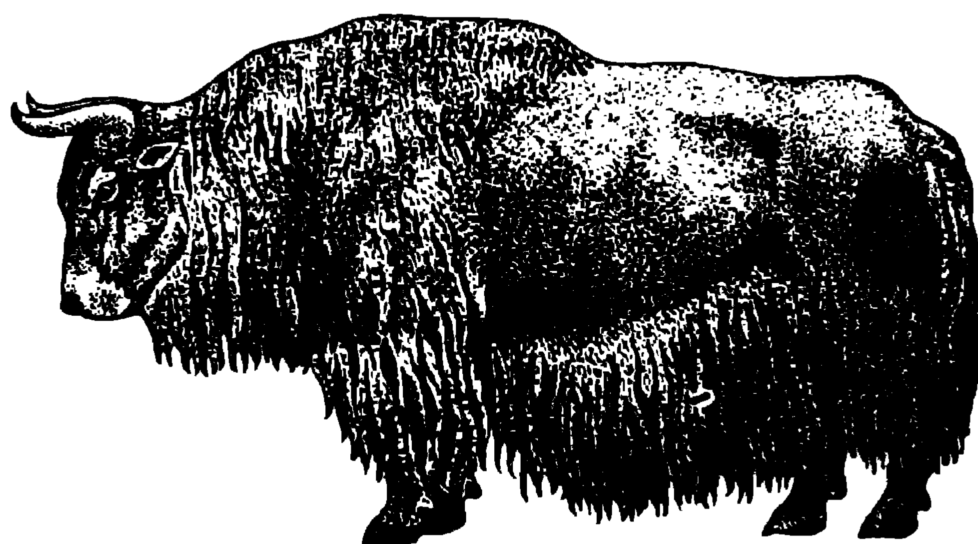
जंगली गधे कच्छ की खाड़ी के शुष्क खारे (नमकीन) क्षेत्र में पाये जाते हैं जहां ये झाड़ियां, घास और रेगिस्तानी पौधे खाते हैं। कभी उत्तर-पश्चिम भारत के काफी बड़े हिस्सों में पाये जाने वाले जंगली गधों की संख्या आज मानव हस्तक्षेप, मवेशियों तथा भेड़ों द्वारा अधिक चराई तथा घरेलू मवेशियों द्वारा फैलायी गयी बीमारियों के कारण करीब कुछ सौ ही रह गयी है।

एशियाई जंगली गधे से संबंधित तथा उतनी ही संकटग्रस्त एक अन्य जाति कियांग अथवा तिब्बती जंगली गधे की है—एसिनस कियांग (मूरक्रॉफ्ट)—जो तिब्बत, लद्दाख और सिक्किम में पायी जाती है। यह आकार में एशियाई गधे से बड़ा तथा अधिक गहरे रंग का होता है।

जंगली याक

बोस मुटस (प्रज़ेवाल्सकी)

गाय का संबंधी जंगली याक विशाल तथा ताकतवर प्राणी है जो 20,000 फुट (6,096 मी.) तक की ऊंचाई तक रह सकता है। इसका शरीर नीचे लटका हुआ, सिर झुका हुआ तथा पैर छोटे होते हैं और पूरे शरीर पर खुरदरे, लंबे, काले भूरे बाल होते हैं। एक पूर्ण वयस्क नर याक का वजन 1800 पौंड (816 कि.ग्रा.) तक हो सकता है। मादा छोटे सींगों वाली तथा आकार में छोटी होती है। याक में हिमालय के बर्फीले क्षेत्र तथा ठंडी जलवायु में रहने की क्षमता होती है।



याक घास और झाड़ियां खाते हैं तथा अपने मुंह या खुरों से बर्फ को हटा कर घास को ढूंढ़ लेते हैं। यदि पानी नहीं मिलता तो बर्फ खा लेते हैं। भारत में जंगली याक लद्दाख और उत्तरी कुमाऊं की पहाड़ियों में पाये जाते हैं। हिमालय की ऊंचाइयों में आदमी ने सदियों से याक को पालतू बनाया है। ये जंगली याक से छोटे होते हैं। इनका फर साधारणतया सफेद और लाल धब्बों वाला होता है। याक से दूध, मांस, बाल और चमड़ा प्राप्त होता है। ये बोझा ढोने के काम भी आते हैं।

जंगली भैंस

बुबालस बुबालिस (लिनेयस)

पालतू जाति की भांति जंगली भैंस 'अरना' अर्ध गोलाकार ऊपर उठे हुए चपटे सींगों, सीधे काले धूमिल सफेद रंग के पैरों वाली और सलेटी काले रंग की होती हैं। नर और मादा दोनों में पूर्ण विकसित सींग होते हैं। हमारी पालतू भैंस की उत्पत्ति इसी जाति से हुई है।

जंगली भैंस घास के दलदली जंगलों तथा असम में ब्रह्मपुत्र और अरुणाचल प्रदेश के मैदानों, मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों, पश्चिमी ओड़िसा और पूर्वी महाराष्ट्र में पायी जाती है। ये छोटे-छोटे झुंडों में घास चरते हुए दिखाई देती हैं और प्रायः दिन के समय उथले तालाबों में लोटती रहती हैं।

गौर

बोस गौरस एच. स्मिथ

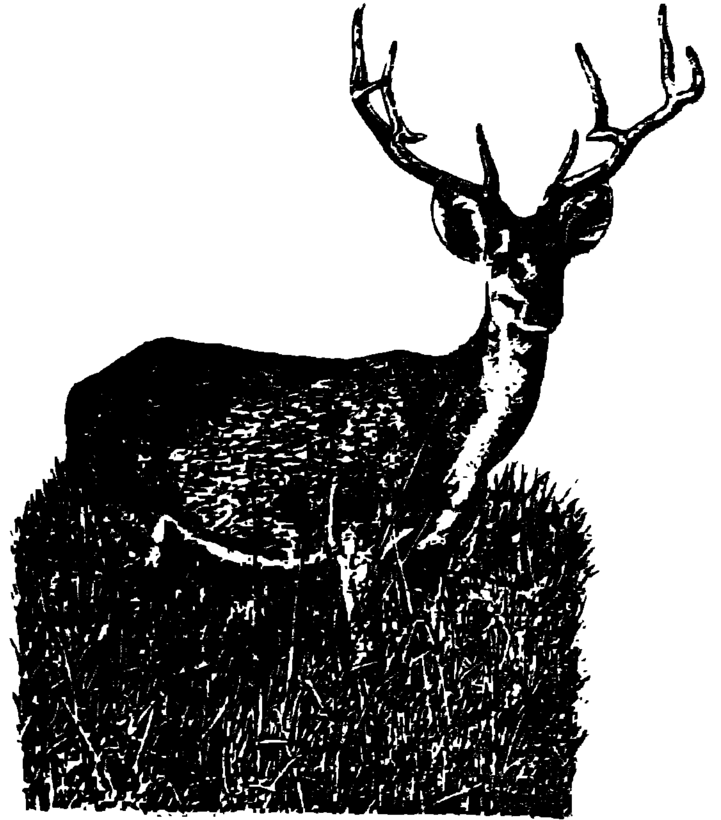
गौर, जिसे भारतीय बाइसन कहा जाता है, एक बहुत बड़ा काला प्राणी है। अमेरिकी बाइसन की तुलना में इसके हाथ-पैर छोटे व सफेद रंग के होते हैं। इसके बाल छोटे होते हैं जिनका रंग गहरा भूरा, गहरा जामुनी, भूरा या काला होता है। पूंछ छोटी होती है और उसके सिरे पर बालों का छोटा काला गुच्छा होता है। नर और मादा दोनों में सींग भली-भांति विकसित होते हैं।

गौर 6 से 12 के झुंडों में अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, असम, मिजोरम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, ओड़िसा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल के घने उष्ण कटिबंधी वनों में पाये जाते हैं। इनका भोजन घास, बांस के प्ररोह, पत्तियां और पेड़ों की छाल है।

बारहसिंगा

सेरवस दुवौसेली जी. कुवियर

बारहसिंगा शाखायुक्त सींगों वाला शानदार प्राणी है जिसके कारण यह 'बारहसिंगा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके शरीर पर सुंदर रंग की ऊनी खाल इसको दर्शनीय आभा प्रदान करती है। गर्मियों में इसके शरीर का रंग हल्का हो जाता है। इसके सींग नियमित अंतरालों पर झड़ते हैं। नये सींगों पर एक मखमली आवरण होता है। वयस्क होने पर जब सींग कठोर हो जाते हैं तो आवरण हट जाता है। ऐसा प्रजनन ऋतु के दौरान होता है।



बारहसिंगा झाड़ियां और घास खाता है। यह 30 से 50 तक की संख्या वाले बड़े झुंडों में पाया जाता है। झुंडों में इनकी संख्या कभी-कभी कई सौ तक पहुंच जाती है। नर साधारणतया प्रजनन के समय ही मादाओं से मिलते हैं। संसर्ग के बाद नर बारहसिंगा अपने साथी को छोड़कर अपने समलिंगियों के झुंड में सम्मिलित हो जाता है। इनमें कुछ अकेले रहने लगते हैं। मादा बच्चों के साथ मादा बारहसिंगों के झुंड में मिल जाती है और सीमित क्षेत्रों में घूमती है। अधिक आयु वाली परंतु संतानोत्पत्ति में सक्षम मादा इन झुंडों का नेतृत्व करती है।

बारहसिंगा उत्तर तथा पूर्वी भारत, उत्तर प्रदेश, असम और मध्य प्रदेश के दलदली अथवा सूखे घास वनों में पाये जाते हैं।

चौसिंगा हिरण

टेट्रासेरस क्वाड्रिकोर्निस (ब्लेनविले)

हिरण जुगाली करते हुए चरने वाले और सम खुर वाले स्तनधारी हैं। इनकी दृष्टि, सूंघने तथा सुनने की शक्ति काफी विकसित होती है तथा ये तेज गति से दौड़ने वाले प्राणी होते हैं।

चार सींगों वाला हिरण या चौसिंगा हिरणों में असाधारण है क्योंकि इसके

एक दूसरे के पीछे चार छोटे और पैने सींग होते हैं। सींग केवल नर में होते हैं। आगे का जोड़ा 5 से 6 सें.मी. लंबा और कभी-कभी खूंटे जैसा होता है। सींगों का पीछे का जोड़ा 12 सें.मी. लंबा होता है। चौसिंगे का शरीर लगभग 1 मीटर लंबा होता है। कंधों से इसकी ऊंचाई 60 सें.मी. होती है। इसके शरीर का फर पतला और छोटा होता है। ऊपर का रंग भूरा या धूमिल-भूरा तथा नीचे की ओर सफेद होता है। प्रत्येक पैर के सामने एक गहरी धारी होती है जो आगे के पैरों पर चौड़ी होती है।

चौसिंगा घने वन में न रहकर भारतीय प्रायद्वीप के ऊंचे-नीचे पहाड़ी क्षेत्र में रहता है। यह पानी के स्रोतों के पास अकेला या जोड़ों में दिखायी देता है जहां ये पानी पीने के लिए आते रहते हैं।

थामिन या भौंहों जैसे सींग वाला हिरण

सेरवस एल्डाई एल्डाई मेक्लेलैन्ड

थामिन एक शानदार हिरण है जो सांभर की तरह दिखायी देता है पर आकार में थोड़ा छोटा होता है। इसके सींग विशेष प्रकार के, लगभग गोलाकार होते हैं जिनके अंत में कुछ (2 से 10) शृंग या शाखाएं होती हैं। प्रत्येक सींग में एक अत्यधिक लंबी भौंह शृंगशाखा होती है जो मुख्य सींग से जुड़ती है और निरंतर घुमाव बनाती है। इस विशेषता के कारण थामिन भौंहों जैसे सींग वाला हिरण कहलाता है। इसकी खाल खुरदरी और पतली होती है जो नर में सर्दियों में गहरी भूरी हो जाती है और गर्मियों में बादामी। मादा तथा बच्चे बादामी रंग के होते हैं। बच्चों में धब्बे होते हैं।

थामिन को खुले झाड़ी वाले जंगल पसंद हैं। अब ये मणिपुर में लोगटक झील के किनारों पर स्थित केबुल लामजाओ राष्ट्रीय उद्यान में ही रह गये हैं। थामिन छोटे झुंडों में घास खाते हुए देखे जा सकते हैं और कभी-कभी वनों के किनारों पर फसलों पर आक्रमण करते हैं।

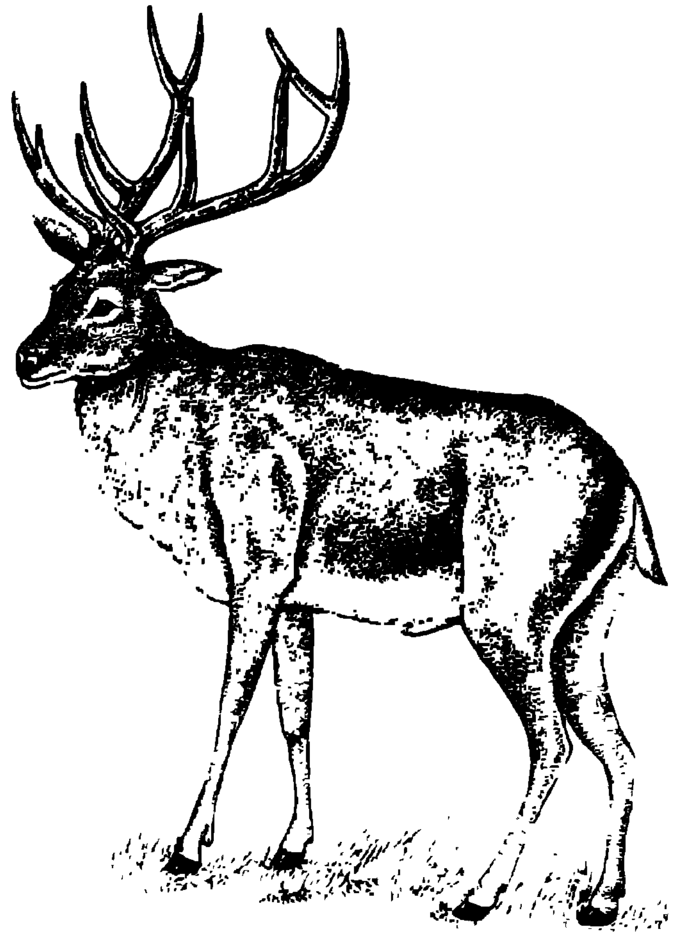
कश्मीरी हिरण (हांगुल)

सेरवस एलेफस हांगलू वैगनर

कश्मीरी हिरण (हांगुल) कई कांटेनुमा सींगों वाला बड़े आकार का हिरण है। प्रत्येक सींग की 5 से 6 तक शृंगशाखाएं होती हैं। शरीर का रंग हल्का या गहरा भूरा और पूंछ के पास नितंब पर सफेद धब्बा होता है। इसके शरीर के दोनों ओर

तथा पैरों का रंग पीलापन लिए होता है। ठोड़ी और कानों का रंग सफेद होता है।

हांगुल 2 से 18 तक के समूहों में कश्मीर घाटी के उत्तर की तरफ तथा हिमाचल प्रदेश के उत्तरी चंबा में नदी के किनारे के घने वनों में रहते हैं। कश्मीर में अब ये 10,000 फुट की ऊंचाई वाले डाचीगांव तक ही सीमित रह गये हैं। गर्मियों में ये बड़े-बड़े झुंडों में कम ऊंचाइयों पर चले जाते हैं। दुर्भाग्यवश, इनकी संख्या तेजी से कम होती जा रही है। इस सदी के आरंभ में इनकी संख्या 5000 थी जो 1970 में कम होकर लगभग 150 रह गयी।



काला हिरण

एन्टीलोप सर्वीकेपरा (लिनेयस)

काला हिरण संसार में सबसे अधिक मनमोहक हिरणों में से एक है। वयस्क नर की त्वचा काली-भूरी या काली होती है। पेट की ओर का भाग सफेद होता है



और आंखों के चारों ओर सफेद धब्बा होता है। इसके एक जोड़ी 50 से 60 सें.मी. लंबे वर्तुलाकार सींग होते हैं। मादा आकार में छोटी होती है जिसकी त्वचा पीलापन लिए भूरे रंग की होती है व पेट की ओर का भाग सफेद होता है। मादा के सींग नहीं होते।

काला हिरण राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और मध्य प्रदेश के मैदानों तथा खुले झाड़ी वाले वनों में रहता है। साधारणतया 10 से 30 या इससे भी अधिक के झुंडों में पाया जाने वाला यह प्राणी संसार के सबसे तीव्र गति से दौड़ने वाले प्राणियों में गिना जाता है। इसका भोजन घास, पत्तियां, बबूल की फलियां, फल आदि हैं।

खेल, मांस और खाल के लिए शिकार और प्राकृतिक आवास के विनाश ने इसकी आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। अब अधिकतर काले हिरण अभयारण्यों तथा राष्ट्रीय उद्यानों के संरक्षित क्षेत्रों में मिलते हैं। राजस्थान के बिश्नोइयों को सदियों से धार्मिक उत्साह के साथ इनकी रक्षा करने का श्रेय प्राप्त है। इसी कारण राजस्थान के खेजड़ली क्षेत्र में मनुष्यों के निवास स्थानों पर काले हिरण स्वतंत्रता से घूमते हुए दिखायी देते हैं।

कस्तूरी मृग

मोस्कस मोस्किफेरस (लिनेयस)

इस जाति के नर मृग में नाभि के पास पेट की खाल के नीचे कस्तूरी की गोलाकार ग्रंथि की उपस्थिति कस्तूरी मृग की विशेषता है। कस्तूरी में तीव्र गंध होती है जो प्रजनन ऋतु में मादा को आकर्षित करने में सहायक होती है। इस समय को छोड़कर, नर कस्तूरी मृग एकाकी होते हैं। वे दिन में छिपे रहते हैं और रात्रि में घूमते व भोजन करते हैं। नुकीला सिर, बड़े कान, छोटी पूंछ और सींगों का न होना इसकी अन्य विशेषताएं हैं।



नर के एक जोड़ी मुड़े हुए दांत होते हैं। इसकी खाल पर खुरदरे बाल होते हैं जिनका रंग लाल भूरा या सुनहरा लाल होता है।

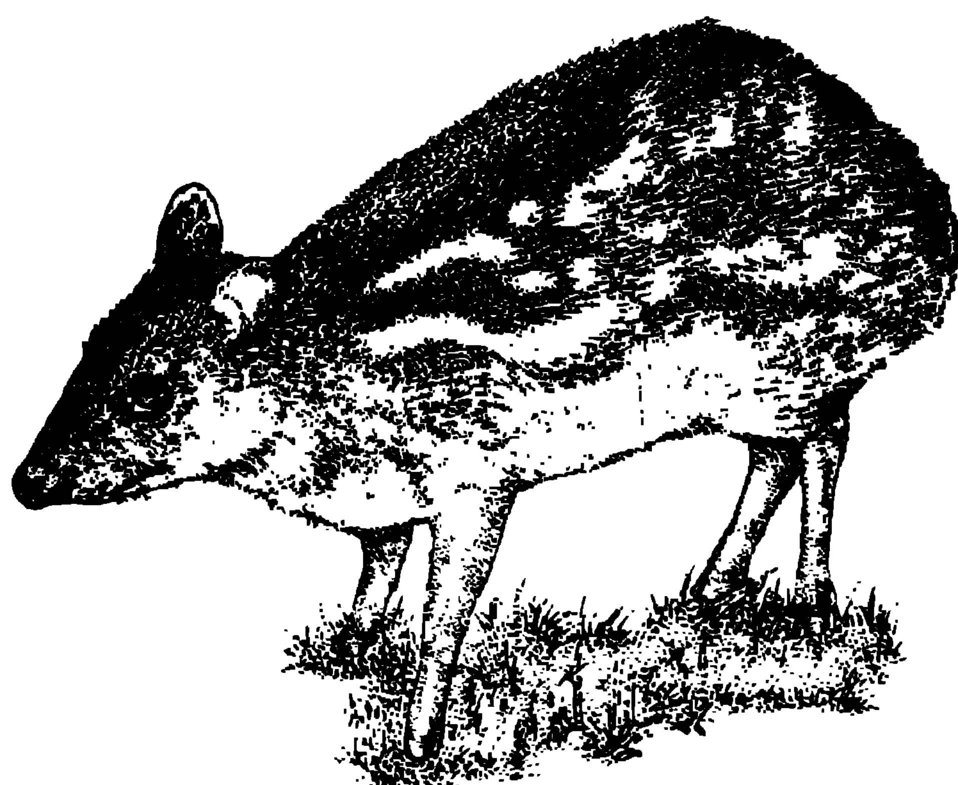
कस्तूरी मृग आज के हिरण का सबसे आदिम रूप है जो कश्मीर से अरुणाचल प्रदेश तक उत्तरी भारत की ऊंचाइयों में रहता है। यह लाइकेन, फर्न, फूल, पत्तियां और घास खाता है। कस्तूरी मृग कंधे से प्रायः 50 सें.मी. तक ऊंचा होता है। यह गठीला होता है और इसके पैर मजबूत व खुर बड़े होते हैं जो बर्फीली, फिसलने वाली चट्टानी भूमि में चलने के अनुकूल होते हैं।

सुगंध बनाने हेतु कस्तूरी प्राप्त करने के लिए इस प्राणी की निर्मम हत्या के कारण इसकी संख्या कम हो गयी है, जिससे कस्तूरी मृग एक अत्यंत संकटग्रस्त जाति बन गया है।

पिसूरी मृग

ट्रेगुलस मैमिना (एर्क्सलेबेन)

पिसूरी मृग एक छोटा प्राणी है जो कंधे से 25 से 30 सें.मी. से अधिक ऊंचा नहीं होता। इसके सींग नहीं होते। पूंछ छोटी होती है। शरीर का रंग जैतूनी भूरा होता है जिस पर पीले रंग की धारियां व धब्बे होते हैं। पिसूरी मृग का पेट की ओर का भाग सफेद होता है। नर के एक जोड़ी छोटे दांत होते हैं, जो रदनक (केनाइन) दांत का परिवर्तित रूप है।



पिसूरी मृग डरपोक प्राणी है और दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, ओड़िसा तथा बिहार के वनों में 1800 मी. की ऊंचाइयों पर मिलता है। यह घास, पत्तियां आदि खाता है।

चिंकारा

गज़ेला डोर्कस (लिनेयस)

चिंकारा बेहद सुंदर प्राणी है। पतला शरीर, कुछ मुड़े हुए और छल्लेदार सींग तथा हल्की लाल भूरे रंग की खाल इस हिरण की विशेषताएं हैं। ठोड़ी, छाती तथा शरीर के निचले भाग सफेद रंग के होते हैं। मादाओं के सींग छोटे होते हैं।



चिंकारा साधारणतया 10 से 20 के छोटे झुंडों में पाये जाते हैं। ये उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत के कम घने जंगलों, झाड़ी वाले जंगलों तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाये जाते हैं। चिंकारा घास, पत्तियां, रसदार फल आदि खाते हैं। ये बहुत फुर्तीले तथा तेज दौड़ने वाले प्राणी हैं।

तिब्बती गज़ेल (चिंकारा)

प्रोकेपरा पिक्टीकोडेटा होग्सन

लगभग घरेलू बकरी के आकार के इस हिरण की विशेषताएं हैं–इसके शरीर का गहरा रंग, पीछे की ओर मुड़े हुए सींग और काले सिरे वाली एक छोटी पूंछ। मादा के सींग नहीं होते।



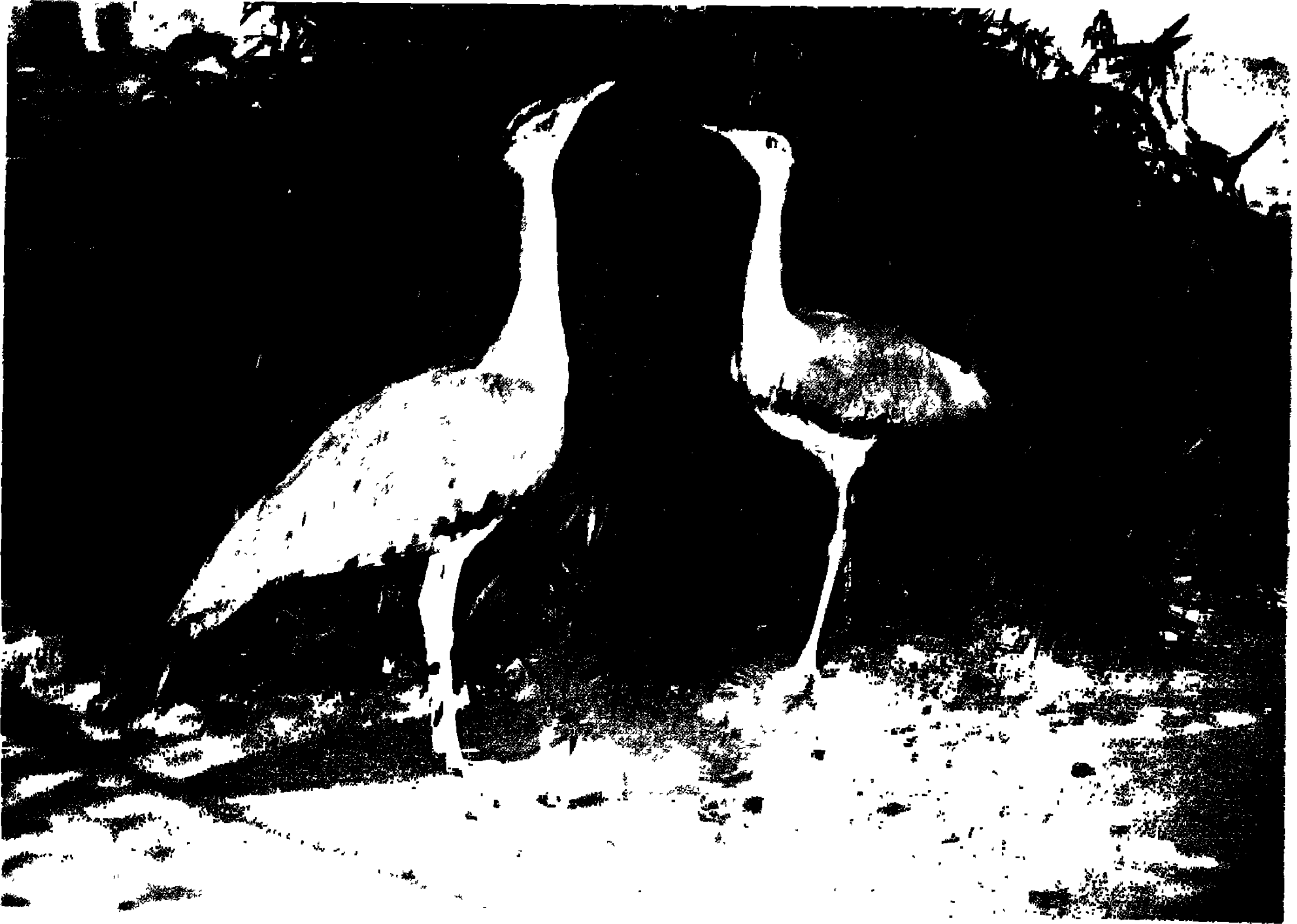
गौर (पृष्ठ 46 देखें)



थामिन (पृष्ठ 48 देखें)



चौसिंगा (पृष्ठ 47 देखें)



हुकना (सोहन चिड़िया) (पृष्ठ 59 देखें)



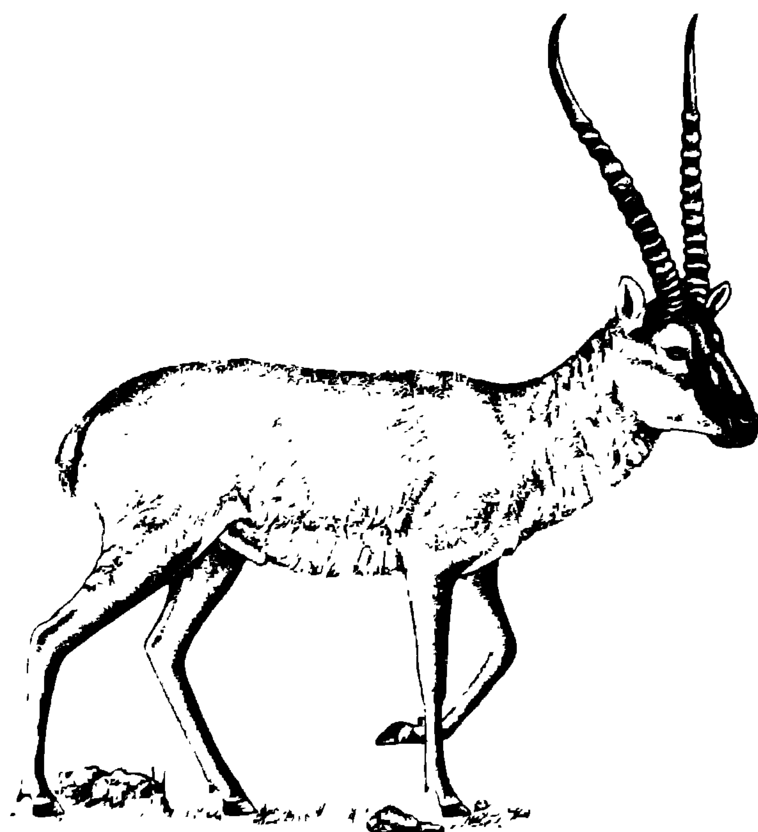
भरतपुर में साइबेरियाई सारस (पृष्ठ 61 देखें)



काली गर्दन वाला सारस (पृष्ठ 62 देखें)



भारतीय चट्टानी अजगर (पृष्ठ 74 देखें)

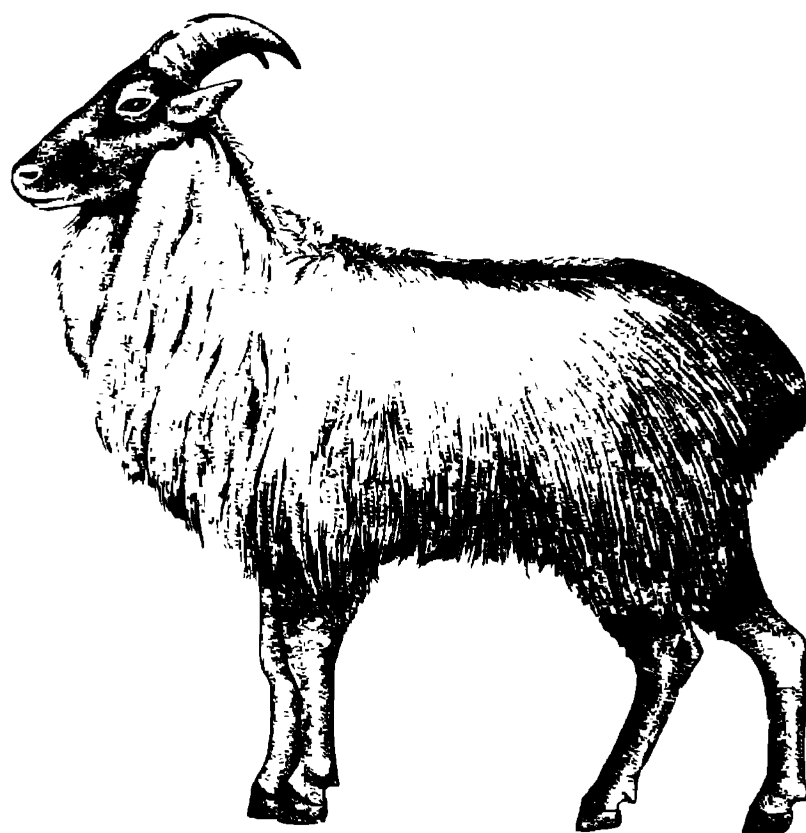


तिब्बती गज़ेल तिब्बत के पठार, उत्तर-पूर्वी लद्दाख तथा कुमाऊं और सिक्किम की पहाड़ियों में मिलता है।

हिमालयी टाहर

हेमिट्रेगस जेमलाहिकस (एच. स्मिथ)

हिमालयी टाहर एक पहाड़ी बकरी है जिसके बाल विशेष रूप से गर्दन और कंधों पर लंबे होते हैं और घुटनों तक पहुंचती अयाल की भांति प्रतीत होते हैं। यह



एक मजबूत शरीर वाला प्राणी है जिसके पैर शक्तिशाली, कान पतले और सीधे तथा सींग पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। इसके शरीर का रंग लाल भूरा होता है।

हिमालयी टाहर जैसा कि नाम से प्रतीत होता है, हिमालय क्षेत्र में कश्मीर से भूटान तक 3000 से 4000 मी. तक की ऊंचाई पर बांज व अन्य वृक्षों से ढंके चट्टानी ढलानों में रहता है। सर्दियों में यह प्राणी कम ऊंचाइयों पर आ जाता है।

नीलगिरि टाहर

हिमिट्रेगस हाइलोक्रिअस (ओगिलबी)

नीलगिरि टाहर हिमालयी टाहर का दक्षिणी प्रतिरूप है। यह दक्षिण भारत में पायी जाने वाली एकमात्र पहाड़ी बकरी है। यह गठीला, फुर्तीला तथा चट्टानी पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के अनुकूल होता है। इसके शरीर का सामान्य रंग सलेटी से लेकर भूरा होता है जो उम्र के साथ गहरा हो जाता है। मादा और बच्चे पीले सलेटी रंग के होते हैं। वयस्क नर की पीठ पर मटियाले भूरे रंग का धब्बा होता है और एक छोटी अयाल होती है। नीलगिरि टाहर के दो सींग पीठ के समानांतर पीछे की ओर मुड़ जाते हैं तथा इनमें आड़ी झुर्रियां पड़ी होती हैं।

नीलगिरि टाहर तमिलनाडु की नीलगिरि पहाड़ियों (जिस कारण इसका नाम प्रसिद्ध है), केरल के अन्नामलाई क्षेत्र और 1300 से 2600 मी. की ऊंचाई पर पश्चिमी घाट के कई अलग-अलग क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये प्रायः 5 से 50 के झुंडों में देखे जाते हैं तथा इनकी कोई विशेष प्रजनन ऋतु नहीं होती, इसलिए बच्चे भी साथ में होते हैं। मादा प्रायः एक बार में दो बच्चों को जन्म देती है।

नीलगिरि टाहर संकटग्रस्त प्राणी है क्योंकि मांस के लिए अवैध शिकार, और प्राकृतिक आवास में परिवर्तन के कारण इसकी आबादी कम हो गयी है। पहाड़ी क्षेत्रों में एक प्रकार के पेड़ों के वन और कई प्रकार के बागानों ने इस प्राणी के प्राकृतिक आवास को बदल दिया है, जबकि यह वनों के ऊपर चट्टानी तथा घास वाले क्षेत्रों में रहने वाला प्राणी है।

साकिन (आइबैक्स)

केप्रा आइबैक्स (लिनेयस)

साकिन एक सुगठित तथा शानदार बकरी है जो हिमालय क्षेत्र में पायी जाती है। नर में लंबी दाढ़ी और लंबे, चपटे तथा मुड़े हुए सींग होते हैं। मादा के सींग



छोटे होते हैं। साकिन के शरीर का रंग ऋतु के साथ बदलता रहता है, सर्दियों में थोड़ा सलेटी मिला हुआ पीला तथा गर्मियों में नर में अनियमित सफेद धब्बों से भरा हुआ गहरा भूरा और मादा में पीला भूरा होता है। साकिन 2500 से 7000 मी. की ऊंचाई पर पाया जाता है। इस बकरी से प्राप्त ऊन उच्च कोटि का होता है और प्रसिद्ध पश्मीना शाल, मोजे, दस्ताने आदि बनाने के काम आता है।

मारखोर

केप्रा फालकोनेरी (वेगनर)

मारखोर एक विशाल शरीर वाली जंगली बकरी है जिसके शरीर पर घने मुलायम बाल होते हैं। नर की एक विशेष सलेटी अयाल होती है जो घुटनों तक पहुंचती है। मादा में अयाल केवल ठोड़ी तक होती है। नर के दो शानदार सींग होते हैं जो लंबे, चपटे और टेढ़े-मेढ़े मुड़े हुए होते हैं जबकि मादा के सींग इससे छोटे होते हैं। मारखोर की लंबे बालों वाली खाल सर्दियों में गेरूए सलेटी रंग की होती है परंतु गर्मियों में छोटी और लाल भूरी हो जाती है।



मारखोर प्रायः 12 से 50 तक के झुंडों में पाये जाते हैं। ये 600 से 3600 मी. तक की ऊंचाई पर कश्मीर सहित हिमालय के पश्चिमी क्षेत्र में रहते हैं।

दृढ़लोमी खरहा

केप्रोलेगस हिसपिडस (पियर्सन)

दृढ़लोमी (हिसपिड) खरहों की विशेषता उनके बालों का कड़ा तथा खुरदरा होना है। सामान्यतया छाती और पूंछ को छोड़कर शरीर के शेष बाकी हिस्से के बाल गहरे भूरे होते हैं। छाती और पूंछ के बाल भूरापन लिए हुए तथा पेट की ओर के बाल सफेद होते हैं। काली गर्दन वाले साधारण खरहों से इसके कान छोटे होते हैं।

हिसपिड खरहे, जो उत्तर प्रदेश, असम, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा के तराई क्षेत्रों के घास वनों में रहते थे, अब अधिकतर पश्चिम बंगाल और असम तक सीमित हैं। धीमी गति से दौड़ने वाले ये खरहे जड़ें, छाल, छोटे प्ररोह और पत्तियां खाते हैं और एक साल में दो या तीन बार संतानोत्पत्ति करते हैं। इसका पाचन तंत्र असाधारण है जो पोषक तत्वों को रोके रखने में सहायक होता है। नियमित मल त्याग के साथ यह आधे पचे भोजन का विसर्जन करता है। उस आधे पचे भोजन को जिसे आमाशय की गोलियां कहते हैं, यह पुनः खा लेता है। यह दूसरी बार पचता है और इससे बहुमूल्य विटामिन प्राप्त होते हैं।

इसकी जननक्षमता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि संसर्ग के तुरंत वाद मादा डिम्बोत्सर्ग करती है जिससे निश्चित रूप से गर्भाधान हो सके।

पक्षी

देशांतरण के रहस्यों से लेकर घोंसला निर्माण के आश्चर्यों तक पक्षियों का अद्‌भुत संसार रंग, सौंदर्य, रोमांस और संगीत से परिपूर्ण है। पक्षी ही एकमात्र ऐसे प्राणी हैं जिनके पंख होते हैं। उनके आगे के बाजू पंखों में परिवर्तित हो गये हैं जिनसे वे उड़ सकते हैं।

आज से 14 करोड़ वर्ष पहले मेसोज़ोइक काल में सरीसृपों के वंशज पक्षी विस्फोटक गति से पृथ्वी पर फैल गये। इनके आकार, प्रकार, रंग तथा स्वभाव में काफी विविधता है। ये प्रत्येक महाद्वीप में रहते हैं और प्रायः प्रत्येक रहने लायक स्थान पर अधिकार कर लेते हैं। इनकी 8600 जीवित जातियां हैं। शायद कुछ दर्जन और भी खोजी जा सकती हैं। इन हजारों जीवित जातियों को पक्षी विज्ञानियों ने 27 गणों में बांटा है, जिनका पुनः 155 कुलों या परिवारों में वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम पक्षी की जानकारी हमें बवेरिया के 'आर्कियोप्टेरिक्स' पक्षी के अवशेष से प्राप्त हुई है। आर्कियोप्टेरिक्स के इस अवशेष की छाप में हल्की रिक्त अस्थियों के चारों ओर पंखों के चिह्न, दांत, पंखों पर पंजे और सुरक्षित रही लंबी सरीसृपीय पूंछ के किनारे पूंछ के पंख स्पष्ट दिखायी देते हैं। इससे मालूम होता है कि प्रथम पक्षी का विकास मेसोज़ोइक काल के छोटे सरीसृपों से हुआ। दस पैसे के सिक्के से भी कम भार वाली नाजुक हमिंग चिड़िया से लेकर 135 कि. ग्रा. से भी अधिक भार वाले विशाल शतुरमुर्ग तक, सब पक्षियों के संसार से संबंधित हैं।

पक्षियों के शरीर का विकास एक कुशल उड़ने वाली मशीन के रूप में हुआ है। यह शक्तिशाली मांसपेशियों, पंख तथा हल्के भार वाले अस्थिपंजर के कारण संभव हुआ है। पक्षियों की चोंच विशेष प्रकार के कार्यों के लिए सुंदर ढंग से बनी है। बाज में कुशलतापूर्वक मांस चीरने के लिए हुक की तरह चोंच है, हंसावर (फ्लेमिंगो) और चमचाचोंच (स्पूनबिल) की चोंच कीचड़ छानने वाला उपकरण है, लकड़ी में छेद करने के लिए कठफोड़वा की संवेदनशील तथा मजबूत चोंच है, बीज फोड़ने के लिए तोते की संडासी जैसी चोंच होती है और धनेश (हार्नबिल) की बड़ी व रंगबिरंगी चोंच होती है जो आक्रमण करने तथा बचाव के काम आती है।

पक्षियों के पैर भी उतने ही भिन्न प्रकार के हैं जितनी कि उनकी चोंच। दौड़ना, खड़े होना, जल में चलना, खरोंचना और पकड़ना—ये पक्षी के पैरों के कुछ कार्य हैं। पक्षियों की दृष्टि और सुनने की क्षमता बहुत अच्छी होती है। उल्लू की आंखें असाधारण रूप से प्रकाश के प्रति संवेदनशील होती हैं जिसके

कारण मनुष्य जितने प्रकाश में देख सकता है (0.00000073 फुटकेंडल), वह उसके सौवें हिस्से में अपने शिकार को देख सकता है। बाज की दृष्टि की तीव्रता मनुष्य की दृष्टि से आठ गुना अधिक मानी जाती है जिसके कारण वह एक मील से भी अधिक दूरी तक साफ देख सकता है।

पक्षी का कान आवाज की तीव्रता का अंतर पहचानने और ध्वनि की तारता में शीघ्र परिवर्तनों का प्रत्युत्तर देने की क्षमता में मनुष्य को बहुत पीछे छोड़ देता है।

कुछ पक्षियों के जीवन में देशांतरण सबसे रोमांचक कार्य है। इनमें लंबी दूरी की यात्रा करने की असाधारण शक्ति होती है और चर्बी के रूप में काफी मात्रा में ईंधन एकत्रित करने की क्षमता होती है। परंतु सबसे बड़ा आश्चर्य है वह तरीका जिससे वे अपना मार्ग ढूंढ़ते हैं—उनका मार्ग निर्देशन। अबाबील, सफेद सारस, टिटहरी, यूरोपीय स्पूनबिल, हनी बजर्ड, श्राइक, कोयल तथा साइबेरियाई सारस आदि सर्दी के कुछ ऐसे मेहमान हैं, जो उत्तरी गोलार्ध से भारत आते हैं।

भारतीय पक्षी विविधता और संख्या में काफी समृद्ध हैं। संसार के जीवित पक्षी जिन 27 प्राकृतिक गणों में विभाजित किये गये हैं, उनमें से 21 गणों में भारतीय पक्षी भी हैं। भारत में पक्षियों की 1200 जातियां हैं जो संसार की कुल 8600 जातियों का 14 प्रतिशत है। अपनी उप-जातियों और भौगोलिक प्रजातियों को मिलाकर भारत की कुल संख्या 2060 तक पहुंच जाती है। इसमें जमीन तथा जल दोनों में रहने वाले पक्षी सम्मिलित हैं। इनमें से 1750 प्रकार के पक्षी हमारी सीमाओं के निवासी हैं, बाकी बाहर से आये हुए हैं।

भारत में पक्षी प्रायः सभी प्रकार के प्राकृतिक आवासों में मिल जाते हैं। भारत के जल स्थलों में कई प्रकार के पक्षी पाये जाते हैं जैसे—बतख, कलहंस, आंजन, जसाना (जलमोर) और बानकर। घास के मैदानों में बुलबुल, बटेर, तीतर और लहटोरा (श्राइक) पाये जाते हैं। उष्ण कटिबंधी वन धनेश, पहाड़ी मैना, हरा कबूतर, सलेटी जंगली मुर्गों आदि पक्षियों का घर है। रामगंगरा, लालचश्म, कठफोड़वे, बेबलर आदि पतझड़ी वनों में रहते हैं। शंकुधारी वनों में क्रॉसबिल, सिरी, मुटरी (मैगपाइ) तथा कोटुखा अथवा बसंता (बारबेट) पक्षी रहते हैं। भारतीय रेगिस्तानों में सेंडग्राउज़, हुकना अर्थात सोहन चिड़िया (बस्टर्ड), नुकरी (कोर्सर), फाख्ता (डोव), मुनिया आदि पक्षी रहते हैं।

प्राकृतिक आवास के विनाश, वनोन्मूलन और प्रदूषण आदि मानव गतिविधियों ने पक्षियों को दुर्लभ तथा संकटग्रस्त बना दिया है। पक्षियों के संरक्षण के लिए कठोर प्रयास करना आज की आवश्यकता है।

नुकरी (जर्डन का कोर्सर)
कुर्सोरियस बिटोरक्वेटस (ब्लाइथ)

नुकरी या जर्डन का कोर्सर संसार के दुर्लभ पक्षियों में से एक है। यह एक ऐसे पक्षी का अनूठा उदाहरण है जिसे विलुप्त मान लिया गया था और जिसका 1900 से पहले तक कोई उल्लेख नहीं मिलता। परंतु जनवरी 1986 में बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी ने आंध्र प्रदेश में गोदावरी नदी की घाटी में इसे पुनः ढूंढ़ निकाला।

इस पक्षी के गुलाबी, मटियाले भूरे पंख, गहरे भूरे रंग की कलगी और चौड़ा, सफेद पक्षावरण (सुपरसीलियम) गर्दन के चारों ओर फंदे की तरह होता है। ठोड़ी और गला सफेद रंग और पेट सलेटी सफेद रंग का होता है। पूंछ सफेद और काली होती है। नुकरी आंध्र प्रदेश की गोदावरी घाटी में अनंतपुर, कुडप्पा, नैल्लोर और भद्राचलम तथा इससे जुड़े हुए महाराष्ट्र के सिरोंचा क्षेत्र में पाया जाता है।

हुकना (सोहन चिड़िया)
आर्डियोटिस नाइग्रीसेप्स (विगोर्स)

हुकना या सोहन चिड़िया (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड) जमीन पर रहने वाला भारी पक्षी है जो प्रायः छोटे शतुरमुर्ग के आकार का होता है। इस पक्षी के पंख गहरे पीले रंग के और दोनों ओर से काले होते हैं। काली कलगी वाला मुकुट, बाहर की ओर उभरी हुई सफेद गर्दन तथा पेट की ओर का भाग सफेद होता है। किसी समय बंगाल, असम और दक्षिण मैसूर को छोड़कर संपूर्ण भारत में पाया जाने वाला सोहन चिड़िया पक्षी अब केवल राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है।

धनेश (ग्रेट पाइड होर्नबिल)
ब्यूसेरॉस बाइकोर्निस होमराई होग्सन

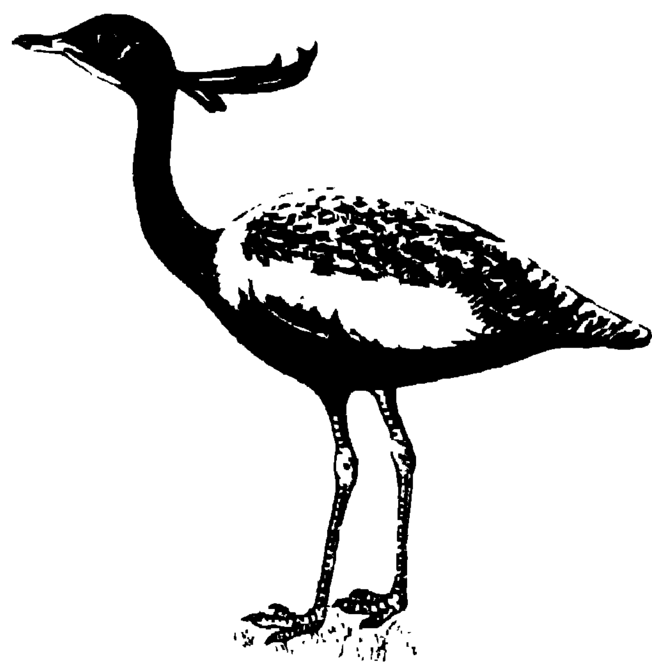


लगभग गिद्ध के आकार के धनेश की विशेषता है उसकी विशाल चोंच जो सींग के आकार की होती है। उसके ऊपर 'U' के आकार की टोपी होती है जो ऊपर से उभरी रहती है। इस पक्षी का रंग काला और सफेद होता है। मुंह, पीठ और नीचे के हिस्से काले, गर्दन और उदर का निचला भाग सफेद होता है। पूंछ में सफेद घेरे होते हैं। धनेश केरल

तक फैले हुए पश्चिमी घाट, अरुणाचल प्रदेश के निचले हिमालयी क्षेत्र और अन्य उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह विशेषतया फल, अंजीर आदि और छोटे प्राणी खाता है जिनमें छिपकली, सांप, चूहे और चिड़ियों के बच्चे सम्मिलित हैं।

लिख फ्लोरिकन

सिफियोटाइडीज इंडिका (जे.एफ.मिलर)



लिख फ्लोरिकन या लेसर फ्लोरिकन प्रायः संपूर्ण भारत के बड़े घास स्थलों तथा झाड़ियों में रहते हैं, परंतु प्राकृतिक आवास के नष्ट होने तथा मांस के लिए शिकार किये जाने के कारण अब दुर्लभ हो गये हैं। प्रजनन ऋतु में नर के सिर, गर्दन और उदर भाग पर काले पंख निकल आते हैं। पंख मटियाले पीले काले रंग से चित्रित होते हैं जिनके किनारे सफेद होते हैं। मुकुट के पंख काले होते हैं। मादा थोड़ी बड़ी होती है जो काले रंग से चित्रित मटियाले पीले रंग की होती है।

वेस्टर्न ट्रेगोपेन

ट्रेगोपेन मेलनोसफेलस (जे.ई.ग्रे)

यह एक बहुत रंग-बिरंगा चकोर (फीजैंट) है। विशेष रूप से नर सफेद धब्बों से युक्त चटख लाल रंग का होता है। पंख रहित मुंह की खाल चटख लाल रंग की होती है। गर्दन नीले रंग की होती है। मादा का रंग सलेटी होता है जिस पर काले और सफेद धब्बे होते हैं। वेस्टर्न ट्रेगोपेन, जो कभी हिमालय क्षेत्र में पाया जाता था, अब प्राकृतिक आवास के विनाश के कारण संख्या में काफी कम रह गया है। अब यह केवल कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के कुछ हिस्सों में मिलता है।

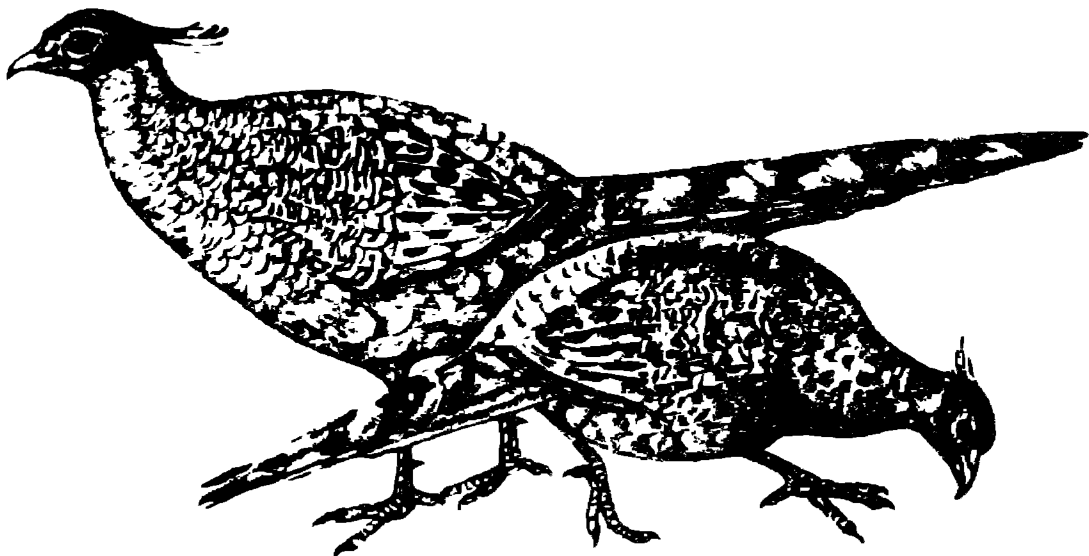
हिमालयी मोनाल
लोफोफोरस इम्पेजनस (लेथम)

नर मोनाल बहुत ही चमकीले रंगों का पक्षी है जिसके चमकीले हरे पंख, लंबी हरी कलगी और जामुनी नीला गला होता है। मादा गहरे और हल्के भूरे रंग के धब्बों से चित्रित भूरे रंग की होती है।

मोनाल की संख्या काफी कम रह गयी है और अब ये हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित हैं।

तीतर
केटरेयस वालीची (हार्डविक)

तीतर अपनी लंबी पूंछ, लंबी, संकरी और पीछे की ओर मुड़ी कलगी जिसका रंग काला भूरा होता है, से पहचाना जाता है। पंख पीले सफेद तथा पीले लाल रंग के होते हैं जिनमें काले रंग की धारियां होती हैं। मादा नर के समान होती है और केवल आकार में छोटी होती है।



तीतर कभी कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश में गढ़वाल तथा कुमाऊं में खूब पाये जाते थे परंतु पिछले कुछ सालों में इनकी संख्या गंभीर रूप से कम हो गयी है।

साइबेरियाई सारस
ग्रुस ल्यूकोजेरेनस पालास

साइबेरियाई सारस एक दलदल में रहने वाला पक्षी है। यह ग्रुइफॉर्नीज कुल में आता है। साइबेरियाई सारस उड़ने के बहुत ज्यादा अनुकूल नहीं होते पर जमीन

तथा पानी में रहने के लिए उपयुक्त होते हैं। ये सर्दियों में उत्तरी साइबेरिया से भारत आते हैं। नवंबर के अंत तथा दिसंबर के आरंभ में यह उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश की प्रयागपुर झील तथा भरतपुर के केवलादेव घाना राष्ट्रीय उद्यान में पहुंचते हैं। मार्च के अंत या अप्रैल के आरंभ में यह पक्षी यहां से चला जाता है।

साइबेरियाई सारस के पंख बर्फीले सफेद तथा इसका मस्तक, चेहरा और सिर लाल रंग के होते हैं। बीच-बीच में कुछ पंख काले होते हैं। संसार में साइबेरियाई सारसों की संख्या कुछ सौ ही रह गयी है। इस जाति के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न किये जा रहे हैं।

1950 से 1970 के बीच लगभग 100 साइबेरियाई सारस सर्दियों में भरतपुर आया करते थे। लेकिन पिछले कुछ सालों में इनकी संख्या घट गयी है और 1989, 1990 तथा 1991 में क्रमशः केवल 22, 14 तथा 7 साइबेरियाई सारस आये। यह कमी संभवतः अनियमित मानसून और सूखे के कारण हुई है। भरतपुर में इनकी आबादी की कमी का दूसरा कारण यह बताया जाता है कि जब से पक्षी विहार में चरने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है, जल में घास की अधिक बढ़वार के कारण पक्षी पानी से राइजोम (प्रकंद) निकालने में असमर्थ हो गये हैं।

काली गर्दन वाला सारस (ब्लैक नेक्ड क्रेन)
ग्रुस नाइग्रीकोलिस पर्ज़ेवल्स्की

काली गर्दन वाले सारस केवल लद्दाख में प्रजनन ऋतु के दौरान अप्रैल-मई से अक्तूबर और अरुणाचल प्रदेश व भूटान में सितंबर से मार्च तक मिलते हैं। ये प्रायः 1 मी. ऊंचे होते हैं। इनकी टांगें लंबी भूरी-काली तथा गर्दन बिल्कुल काली होती है। शरीर का सामान्य रंग हल्का सलेटी होता है तथा पूंछ झुके हुए काले परों से ढंकी होती है।

काली गर्दन युक्त सारस अनाज, जड़ें, कंद, कीट तथा छोटे रीढ़युक्त जीवों को खाता है। लद्दाख में प्रजनन ऋतु के पश्चात् यह अपने बच्चों के साथ सर्दियों में गर्म स्थानों पर चला जाता है। संकटग्रस्त होने के कारण काली गर्दन वाले सारस को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है और वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम की सूची-1 में सम्मिलित किया गया है।

भारत में पायी जाने वाली पक्षियों की 2100 जातियों और उपजातियों में से जिन पक्षियों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनसे भी अधिक जातियां प्राकृतिक

आवासों में मानव के अनधिकृत प्रवेश, अवैध शिकार, व्यापार, वायु तथा जल के प्रदूषण आदि के परिणामस्वरूप संकटग्रस्त हैं। इनमें सफेद पंख वाली वुड डक–कैरिना स्कुटुलाटा (मुलर), लार्ज व्हिसलिंग टील–डेंड्रोसिग्ना बाइकलर (वियेलोट), अंडमान टील–एनास गिब्बेरिफॉर्न साल्बोगुलेरिस (ह्यूम), हिमालयी गरुड़–एक्विला क्राइसेटॉस डेफेनियम (सेवर्जोव), निकोबार मेगापोड–मेगापोडियस फ्रेसिनेट (गेमार्ड) तथा मालाबार पाईड हार्नबिल आदि उल्लेखनीय हैं।

सरीसृप

सरीसृप पहले रीढ़युक्त प्राणी थे जिन्होंने शुष्क भूमि पर सफलतापूर्वक अधिकार जमाया। ऐसी मान्यता है कि ये अपर कार्बोनिफेरस काल (30 से 26 करोड़ वर्ष पूर्व) के दौरान उत्पन्न हुए और उभयचरों (एम्फिबियन) के वंशज हैं। शुष्क, शल्की खाल इनकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है, हालांकि सभी शल्की प्राणी सरीसृप नहीं होते। सरीसृप का अंग्रेजी नाम 'रेप्टाइल' लैटिन शब्द 'रेप्टाइलिस' से बना है, जिसका अर्थ 'रेंगना' है। यद्यपि अधिकतर सरीसृप भूमि पर रहते हैं, कुछ जल में रहने के अनुकूल हो गये हैं जैसे–कछुए। ये भी प्रजनन भूमि पर ही करते हैं।

सरीसृपों को प्रायः 'असमतापी' या ठंडे खून वाले प्राणी कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि उनके शरीर का तापमान बाहर के तापमान के साथ परिवर्तित होता रहता है। उनके शरीर का तापमान एक-सा नहीं रहता जैसा कि पक्षियों और स्तनधारियों में होता है जिन्हें 'समतापी' प्राणी कहा जाता है। सरीसृपों की चयापचयी गतिविधियां कम होने के कारण ताप कम उत्पन्न होता है जिस कारण वे ताप नियमन के लिए सूर्य के उपलब्ध प्रकाश का कुशलतापूर्वक उपयोग करते हैं। अधिकतर सरीसृप उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में रहते हैं। जो शीतोष्ण जलवायु में रहते हैं वे शीतकाल में शीत निद्रा में रहते हैं। सरीसृपों का भूमि पर जीवन उल्व (एम्नियोटिक) अंडों के विकास से संभव हुआ। इस अंडे में अपने जलीय वातावरण तथा भ्रूण के विकास के लिए पोषक तत्व होते हैं और यह जमीन पर दिया जा सकता है। सरीसृपों में समागम द्वारा मादा के शरीर में ही अंडों के निषेचन के लिए प्रजनन प्रक्रिया का भी विकास हुआ। इन दोनों कारणों से सरीसृप जलस्थलीय प्राणियों से श्रेष्ठ हैं, जिन्हें अंडों के निषेचन के लिए जल पर निर्भर करना पड़ता है।

मेसोज़ोईक काल में (20 से 7 करोड़ वर्ष पूर्व) पृथ्वी पर सरीसृपों का राज था। वह सरीसृपों का 'स्वर्ण युग' था जिसमें ब्रेकियोसौरस, ब्रोन्टोसौरस,

डिपलोडोकस, टाइरेनोसौरस रेक्स, ऐलोसौरस, स्टेगोसौरस तथा कई अन्य डाइनोसौर खूब पनपे। 14 से 12 करोड़ वर्षों के प्रभुत्व के बाद डाइनोसौर युग समाप्त हो गया और उनके स्थान पर स्तनधारियों का प्रभाव बढ़ने लगा। यद्यपि इनके लुप्त होने के बारे में कई मत हैं, जैसे—जलवायु में आकस्मिक परिवर्तन, पेड़-पौधों में परिवर्तन, स्तनधारियों द्वारा उनके अंडों का खाया जाना आदि, फिर भी यह किसी को पता नहीं है कि वास्तव में क्या हुआ। यह हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि अब तक कोई भी डाइनोसौर जीवित नहीं रहा।

आजकल सरीसृपों के केवल चार प्रमुख समूह हैं जबकि पहले इनके 16 समूह थे। ये हैं—कछुए, मगर, टुआटरा, जिसके विषय में कम जानकारी है, तथा छिपकलियां और सर्प। भारत में सरीसृपों की 420 से भी अधिक जातियां हैं। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए सरीसृपों की खाल के उपयोग ने इनमें से अनेक प्राणियों को दुर्लभ तथा संकटग्रस्त बना दिया है। भारत के सरीसृपों की कुछ संकटग्रस्त जातियों का वर्णन यहां किया गया है।

कछुए

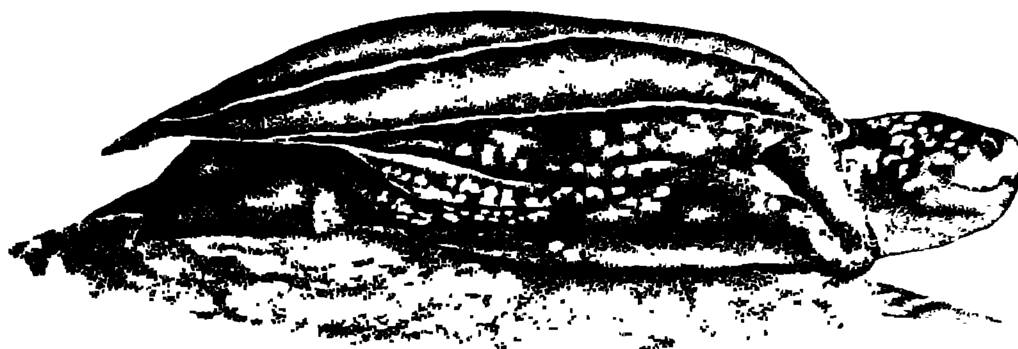
कछुए सरीसृपों के कीलोनिया गण से संबंधित हैं। इस गण में समुद्र और ताजा पानी के कछुए, अथवा रामानंदी कछुए और जमीन के कछुए सम्मिलित हैं। कछुए अस्थियों के खोल से पहचाने जाते हैं जिसके दो भाग होते हैं—ऊपर की ओर केरापेस और नीचे की ओर प्लासट्रोन। खोल में शल्की ढालों की एक बाहरी परत होती है तथा अंदर की परत अस्थियों की पट्टियों से बनी होती है। शरीर खोल के अंदर रहता है तथा गर्दन, पैर और पूंछ खोल के बाहर स्वतंत्र रूप से गतिशील होते हैं। इसलिए कीलोनिया गण का यह प्राणी डिब्बे में सुरक्षित प्राणी के समान है।

कछुओं की खाने की आदतें भिन्न हैं, कुछ शाकाहारी हैं व अन्य सर्वभक्षी हैं। नर-मादा बाह्य रूप को देखकर आसानी से नहीं पहचाने जा सकते। नर में सामान्यतया पूंछ लंबी और प्लासट्रोन दबा हुआ अर्थात् अवतल होता है। मादा मिट्टी में अंडों को झुंड में देती है और उन्हें सेने के लिए दबा देती है। अधिकतर समुद्री कछुओं में अंडे सेने की अवधि 40 से 70 दिनों की होती है। कछुओं की आयु लंबी होती है। एक विशाल कछुए (जियोकीलोन जाइगेन्टिया) के हिंद महासागर के सिसली द्वीप समूह में 152 साल तक जीवित रहने का प्रमाण मिला है। कछुओं के अंडों को खाने के लिए एकत्र करने, उनके मांस और सूप को अत्यधिक

पसंद करने, खोल को सजावट के लिए उपयोग करने और समुद्री तटों व समुद्र के प्रदूषण से कछुओं की अनेक जातियां दुर्लभ और संकटग्रस्त हो गयी हैं।

चीमड़ कछुआ (लेदरबैक टर्टल)
डर्मोचेलिस कोरियेसिया (लिनेयस)

हिंद महासागर में पाये जाने वाले चीमड़ कछुए का वजन 400 से 700 कि. ग्रा. तक होता है। यह संसार के जीवित कछुओं में सबसे बड़ा कछुआ है। कड़ी और चिम्मड़ खाल के कारण इसे आज के कछुओं में सबसे प्राचीन माना जाता है। इसकी खाल में हड्डियों के टुकड़ों से लगता है कि यह पूर्वज कछुओं की हड्डियों के खोल के समान है। शरीर का ऊपरी भाग-केरापेस, चिकना और रबर जैसा



होता है जिसमें कुछ लंबाई में उभरी हुई रेखाएं होती हैं। त्रिकोणाकार शरीर, बड़ा सिर और भारी गर्दन इस कछुए के विशेष लक्षण हैं। पैर चप्पू जैसे होते हैं। फ्लिपर का आगे का जोड़ा लंबा और तिकोना होता है जबकि पीछे का जोड़ा चौड़ा और पूंछ से मिला हुआ होता है। श.ार के ऊपर का रंग सामान्यतः सलेटी काला होता है जिसमें कुछ सफेद धब्बे होते हैं। नीचे का हिस्सा हल्का गुलाबी और कहीं-कहीं सफेद और काला होता है। इस हिस्से पर प्रायः गुलाबी या नीले धब्बे होते हैं। पूंछ काले रंग की होती है।

चीमड़ कछुआ बिना रीढ़ वाले समुद्री प्राणियों, मछलियों तथा जलीय पौधों को खाता है। यद्यपि मूल रूप से यह उष्णकटिबंधी प्राणी है, फिर भी यह उत्तरी ध्रुव प्रदेश को छोड़कर संसार के सभी भागों में मिलता है। पानी में ये सहज रूप से जीते हैं, जबकि जमीन पर उतनी कुशलता से चल-फिर नहीं सकते।

अधिकतर जलीय कछुओं की तरह मादा चीमड़ कछुआ विशेषकर उस समय असुरक्षित होती है जब वह अंडे देने और उन्हें रेत में दबाने के लिये पानी से बाहर निकलती है। जब वह जल से निकलकर समुद्री तट पर रेंगना आरंभ करती है, तो अपनी पीठ पर रेत डालकर आसपास के वातावरण से मेल खाने लगती

है। रेत में एक बड़ा गड्ढा बनाकर उसमें अंडे देती है। अंडों को ढंकने के बाद मादा आसपास के क्षेत्र को पंजों से दबाकर समान बना देती है जिससे वे आसानी से न ढूंढ़े जा सकें और आसपास कस्तूरी जैसी तीव्र गंध छोड़कर समुद्र में चली जाती है। अंडों में से निकलने के पश्चात् बच्चे पूर्णतया अपने पर ही निर्भर होते हैं।

मई-जून प्रजनन का सर्वोत्तम समय होता है जब मादा लगभग 90 से 200 अंडे देती है। मनार द्वीप समूह की खाड़ी और अंडमान द्वीप समूह अंडे देने के लिए उत्तम स्थान हैं। मनुष्यों द्वारा अंडे एकत्र करने और समुद्र के प्रदूषण ने इस कछुए को दुर्लभ बना दिया है।

हरा समुद्री कछुआ

कीलोनिया माइडास (लिनेयस)

हरा समुद्री कछुआ संसार के उष्ण-कटिबंधी और उप-उष्ण-कटिबंधी महासागरों में पाया जाता है। इसका शरीर चपटा, चिकना और हृदय के आकार का होता है। इसके केरापेस में अस्थिविकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। इसका सिर गोल और छोटा होता है, साथ ही एक छोटी थूथनी और लंबे फ्लिपर होते हैं। वयस्क कछुए के शरीर का रंग हरे से लेकर भूरा और धब्बेदार होता है। ऊपर की ओर भूरे या काले रंग के धब्बे और धारियां होती हैं और नीचे की ओर का रंग हल्का पीला होता है। एक वयस्क कछुए का औसत वजन 150 से 175 कि. ग्रा. के बीच होता है।

भारत में हरा समुद्री कछुआ अंडमान द्वीप समूह और गुजरात में सौराष्ट्र के पास के समुद्री तट और चट्टानी किनारों पर धूप सेंकता हुआ मिलता है। मादा समुद्री तट पर गड्ढे बनाकर उनमें 350 से 600 अंडे देकर रेत से ढंक देती है। बच्चे निकलने में 40 से 50 दिन लगते हैं। चूंकि इनके अंडे और मांस खाने के काम आता है, इसलिए हरे कछुओं के विलुप्त होने का भय है। इनकी रक्षा और आबादी बढ़ाने के प्रयत्नों को सफलता नहीं मिली है क्योंकि हमें अभी तक उनके अंडे देने के स्थान, देशांतरण की आदतें और प्रजनन व्यवहार के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है।

बाजठोंठी कछुआ

एरेटमोचेलिज इम्ब्रिकाटा (लिनेयस)

यह सबसे छोटा समुद्री कछुआ है जिसका वजन 60 से 140 कि. ग्रा. के बीच होता है। संकरा दांतेदार 'केरापेस' जिसमें एक दूसरे को ढंकते हुए कवच जैसी पट्टियां (स्क्यूट्स) होती हैं, पतली गर्दन व बाज की चोंच जैसी थूथनी इस कछुए

की विशेषताएं हैं। शरीर कहरुवा (ऐंबर) रंग का होता है जिसकी कवच पट्टियों पर भूरी और काली धारियां फैली होती हैं। नीचे का हिस्सा पीला नारंगी अथवा लाल भूरे रंग का होता है।

संसार के अनेक भागों के गर्म समुद्रों में रहने वाला बाजठोंठी कछुआ हिंद महासागर में विशेषकर अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों के पास मिलता है। यह कई प्रकार के समुद्री रीढ़विहीन प्राणियों और मछलियों को खाता है। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए इसके सुंदर खोल का उपयोग किया जाता है जिससे अनेक सजावट की वस्तुएं बनायी जाती हैं। इस कारण यह कछुआ संकटग्रस्त हो गया है।

मगर

मगर, ऐलिगेटर और घड़ियाल सरीसृप के क्रोकोडिलिया गण के प्राणी हैं। ये प्राणी सरीसृपों के स्वर्ण काल से,जो 16 करोड़ वर्षों से भी प्राचीन है, अपने आकार और व्यवहार में बिना किसी खास परिवर्तन के पृथ्वी पर रह रहे हैं। ये हमें अत्यंत प्राचीन समय के उन भयंकर एवं कवचयुक्त प्राणियों की याद दिलाते हैं जो अब काफी समय से विलुप्त हो गये हैं।

सभी प्रकार के मगरों की बनावट विशेष रूप से जलीय जीवन के अनुकूल है जैसे नासिका छिद्रों का थूथनी के सिरे पर होना, जिससे यह प्राणी अपने शेष शरीर के जल में डूबे रहते हुए भी सांस ले सकता है; गोता लगाते समय नासिका छिद्रों और कानों को ढंकने के लिये पल्लों की व्यवस्था का होना और आंखों की तीसरी पलक की उपस्थिति जिसके कारण यह प्राणी पानी में भी कुछ हद तक देख सकता है। ये अपने शरीर के आकार, छोटे पैर और पतवार की भांति प्रयुक्त होने वाली एक लंबी पूंछ के कारण बहुत अच्छे तैराक हैं। इनका शरीर प्रायः काले रंग का होता है जिस पर अस्थियों की पट्टियों का कवच होता है। भूमि पर ये चलते हैं अथवा अपने पेट के बल सरकते हैं।

मगर की सूंघने की शक्ति, दृष्टि और सुनने की शक्ति बहुत तीव्र होती है। इनमें दो जोड़ी सुगंध-ग्रंथियां होती हैं जिनमें से एक गले में और एक अवस्कर (क्लोएका) अथवा वेंट में होती है। प्रजनन ऋतु में ये कस्तूरी जैसा स्राव उत्पन्न करते हैं जिसे ये जल या जमीन पर छोड़ते हैं। मगर अपने अंडाकार, कठोर खोल युक्त अंडे मिट्टी में सेने के लिए दबा देते हैं। मादा घोंसले की निगरानी करती है और बच्चों को अंडे के छिलके तोड़कर निकलने में सहायता करती है। वह उन्हें अपने मुंह में पकड़कर जल तक ले जाती है और परभक्षियों से बचाती है।

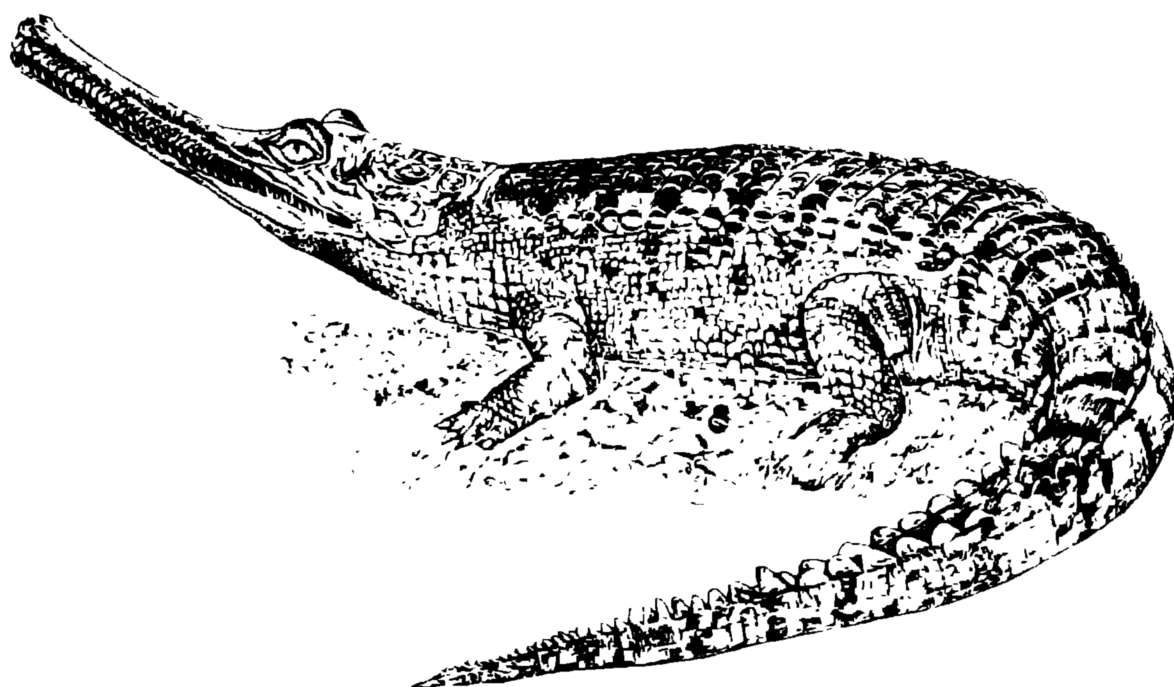
सभी मगर मांसाहारी होते हैं। इनके दांत जीवन भर गिरते रहते हैं और उनके स्थान पर नये दांत आ जाते हैं। मगर की शारीरिक बनावट की एक विशेषता चार कक्षों का हृदय है जो अन्य सरीसृपों के तीन कक्षों के हृदय से भिन्न है।

प्राचीन मिस्र निवासी नील नदी के जल में रहने वाले मगरों की पूजा करते थे। वे इन प्राणियों को पालते थे और मंदिरों के तालाबों, विशेषकर थेबीज़ में रखते थे। जब ये पवित्र मगर मर जाते थे तो 'ममी' के रूप में पवित्र अवशेषों को सुरक्षित रखा जाता था। भारत के कुछ हिस्सों में भी मगर की पूजा आज तक की जाती है।

घड़ियाल

गेवियेलिस गेंजेटिक्स (ग्मेलिन)

घड़ियाल या गेवियल अन्य सभी मगरों की जातियों से भिन्न है क्योंकि इसकी एक लंबी पतली थूथन होती है जो मछली पकड़ने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होती है। इसके ऊपर और नीचे के जबड़ों में हर तरफ दो दर्जन से अधिक पैने दांत होते हैं। शरीर कवच की पट्टियों से ढंका होता है। इसमें गहरे भूरे रंग के धब्बे या धारियां होती हैं। वयस्क नर की थूथन के सिरे पर एक कूबड़ होता है जो एक मिट्टी के घड़े के समान दिखायी देता है। इसी कारण इनका नाम 'घड़ियाल' पड़ा।



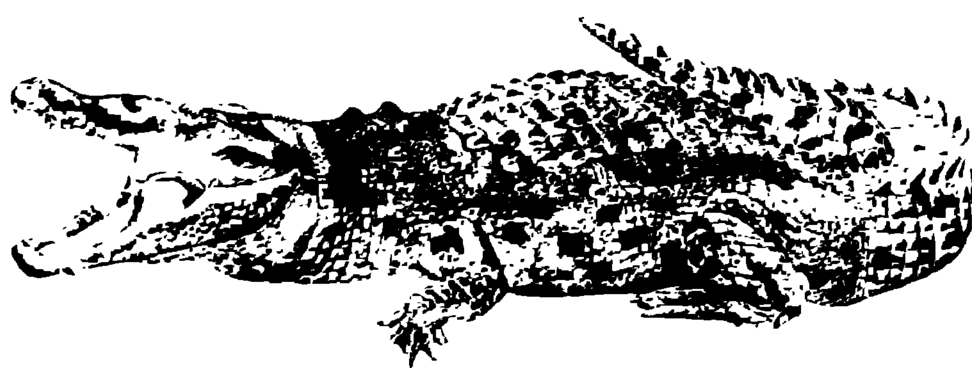
घड़ियाल गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु और महानदी नदियों में मिलता है। ये मुख्यतः मछलियां खाते हैं परंतु पक्षी, बकरियां और अन्य रीढ़युक्त प्राणी भी खा लेते हैं। शीतकाल में घड़ियाल नदी तट पर लंबे समय तक धूप सेंकते हैं।

दो दशक पूर्व घड़ियालों की आबादी बहुत कम हो गयी थी क्योंकि खाल के लिए उनकी हत्या की जाती थी। परंतु अब संरक्षण प्रयत्नों और प्रजनन योजनाओं के फलस्वरूप इनकी स्थिति में बहुत सुधार हुआ है।

नदीमुख मगर

क्रोकोडाइल्स पोरोसस श्नाइडर

नदीमुख या मुहाना मगर सभी मगरों में सबसे बड़ा है और तटीय गरान (मैंग्रोव), नदीमुखों आदि में रहता है। यह अर्धजलीय जीवन के लिए पूर्ण रूप से अनुकूल है। यद्यपि इसकी सर्वाधिक रिकार्ड की गयी लंबाई 10 मी. है लेकिन प्रायः यह



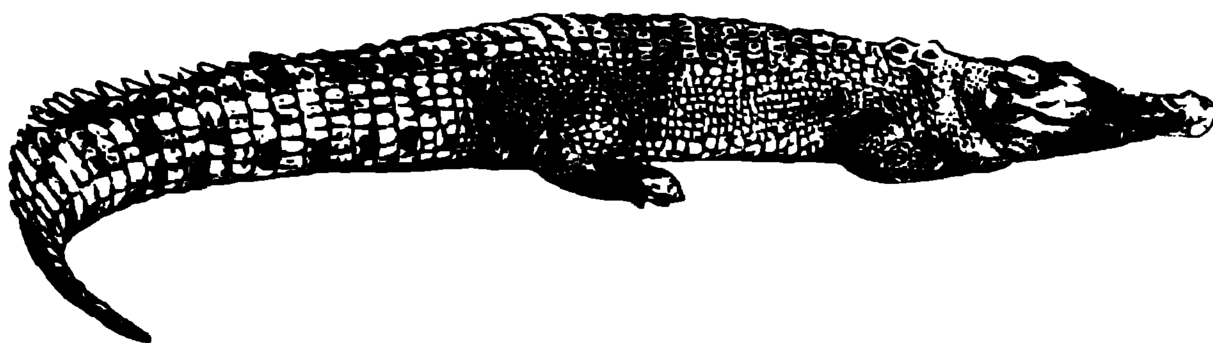
7 से 8 मी. लंवा होता है। शरीर शृंगी खोलयुक्त अस्थि-पट्टियों से ढंका होता है जिनसे यह प्राणी गहरे जैतूनी रंग का दिखता है। पूंछ के ऊपरी हिस्से के किनारे आरी के समान दिखायी देते हैं। जवड़ों में मजवूत धुरी वाले दांत होते हैं जो मुंह बंद होने पर भी दिखायी देते हैं। ये मछली, सरीसृप, जल पक्षी और छोटे स्तनधारियों को खाते हैं। नदीमुख मगर भारत के पूर्वी तट तथा अंडमान और निकोवार द्वीप समूहों में पाये जाते हैं।

मकर

क्रोकोडाइल्स पेलुस्ट्रिस (लेसन)

दलदलीय मगर या मकर की औसत लंवाई घड़ियाल और नदीमुख मगर से काफी कम, औसतन 3 से 5 मी. होती है। इसकी थूथन छोटी और नदीमुख मगर जैसी होती है।

मकर धीमी गति वाला प्राणी है और नदी, नालों, झीलों आदि में पाया जाता है। यह मछली, मेंढ़क, पक्षी और छोटे स्तनधारियों को खाता है। दलदली मगर



जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और रेगिस्तानी क्षेत्रों को छोड़कर संपूर्ण भारत में पाया जाता है। बाढ़ और सूखे के कारण प्राकृतिक आवास के विनाश, खाल के लिए शिकार, अंडों का उपयोग आदि कारणों से इसकी आबादी कम हो गयी है। मगर प्रजनन योजनाओं तथा संरक्षण के प्रयत्नों से इसकी स्थिति में सुधार हुआ है।

छिपकलियां

छिपकलियां और उनके निकट संबंधी सर्प आधुनिक सरीसृपों में सबसे अधिक जाने-पहचाने हैं और लगभग सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। छिपकलियां और सर्प एक दूसरे से इतने निकट संबंधित हैं कि उन्हें एक ही स्क्वामाटा में रखा गया है। यह लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'शल्की जीव' है। वास्तव में सभी सरीसृप शल्की जीव हैं क्योंकि उनकी खाल शल्कों और शृंगीय पट्टियों से ढंकी रहती है।

सभी सरीसृपों की भांति छिपकलियां अपने शरीर को गर्म रखने के लिए बाह्य ताप साधनों पर निर्भर करती हैं। इसके कारण कभी-कभी इन्हें 'एक्टोथर्मिक' (अर्थात् वे जीव जो बाहर से ताप प्राप्त करते हैं) प्राणी कहा जाता है।

अपने शत्रुओं से रक्षा करने के लिए छिपकलियों के व्यवहार तथा शारीरिक बनावट में कई तरह का विकास हुआ है। रक्षा का सबसे आसान और सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला तरीका है खतरे को भांप कर भाग जाना। उड़न छिपकली हवा में तैरकर अर्थात् ग्लाइड करके रक्षा स्थल या कोने में चली जाती है। ये अपनी पिछली टांगों पर भूमि पर तेजी से दौड़ सकती हैं। वे तैरकर नाले अथवा तालाब के तल में जा सकती हैं। कुछ जल की सतह पर भी भाग सकती हैं या जमीन में बिलों में घुस जाती हैं।

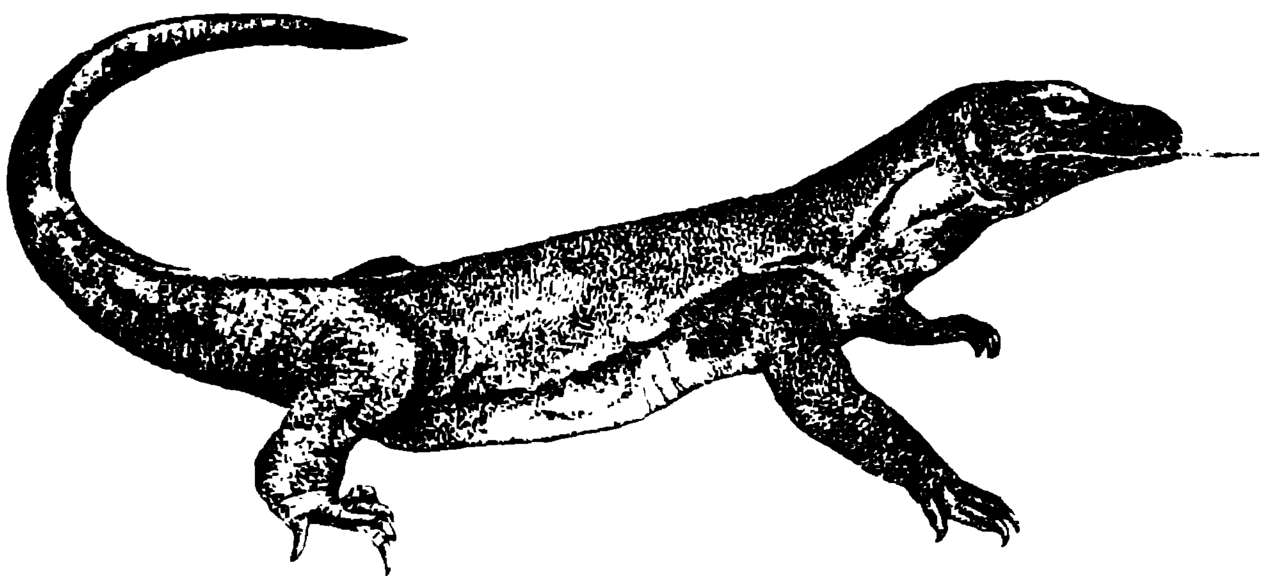
भारत में छिपकलियां विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों में रहती हैं। ये

रेगिस्तान से लेकर सदाबहार वनों और हिमालय में 5000 मी. तक की ऊंचाई पर भी मिलती हैं। भारतीय छिपकलियों में से कोई भी जहरीली नहीं होती। ये मुख्यतः कीड़े खाती हैं, कुछ छोटे प्राणी भी खाती हैं, और कुछ शाकाहारी हैं।

भारतीय गोह

वैरेनस बेंगालेंसिस (डाउडिन)

गोह भारत में प्रायः सभी प्रकार के प्राकृतिक आवासों में पायी जाती है। वयस्क का शरीर 70 से 75 सें.मी. और पूंछ 100 सें.मी. के लगभग लंबी होती है। इसके शरीर पर कुछ हल्की काली आड़ी धारियां होती हैं। शिखर के शल्क बड़े होते हैं। दांत लंबे और पैने होते हैं और जीभ अत्यधिक लंबी तथा दुशाखी होती है।



गोह छोटे स्थलीय रीढ़युक्त प्राणी, भूमि पर रहने वाले पक्षी और उनके अंडे, कीड़े-मकोड़े और मछलियां खाती है। इस छिपकली की खाल व्यापारिक उद्देश्यों के लिए काम में लायी जाती है जिसके कारण इसकी संख्या अत्यधिक कम हो गयी है।

कबरा गोह

वैरेनस सैल्वेटर (लारेन्टी)

कबरा गोह संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाती है। आकार में यह संसार की सभी छिपकलियों में दूसरे स्थान पर है। इंडोनेशिया में पायी जाने वाली कोमोदो

ड्रैगन आकार में सबसे बड़ी होती है। कबरा गोह 3 मी. तक लंबी होती है। इसका सिर शुण्डाकार और गर्दन लंबी तथा पतली होती है। इसका शरीर एक दूसरे पर चढ़े हुए छोटे शल्कों से ढंका रहता है और गहरे जैतूनी रंग का होता है जिस पर पीले धब्बे होते हैं। यह सर्वभक्षी प्राणी है और पक्षियों के अंडे तथा मछलियां विशेष रूप से पसंद करती है। आर्द्र, दलदली, नम क्षेत्रों, नदियों के किनारे, नदीमुख के वन आदि इस छिपकली के सामान्य प्राकृतिक आवास हैं।

खाल के व्यापार के कारण यह जाति बहुत कम हो गयी है। यह भारतीय वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम की सूची-1 के अंतर्गत संरक्षित है।

पीली गोह

वैरेनस फ्लेवेसेन्स (ग्रे)

उत्तरी भारत में पंजाब से पश्चिम बंगाल तक पायी जाने वाली पीली गोह गहरे भूरे रंग की छिपकली है जिसका शरीर लालिमा लिए होता है। इसकी थूथन छोटी तथा पूंछ लंबी और बहुत चपटी होती है। यह एक अच्छी तैराक है और ताजे जलीय केकड़े व छोटी मछलियां खाती है। इसकी सुंदर खाल का व्यापार किया जाता है जिसके कारण इसकी आबादी कम हो गयी है।

भारतीय रेगिस्तानी गोह

वैरेनस ग्राइसिअस (डाउडिन)

भारतीय रेगिस्तानी गोह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और पंजाब के शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है। यह मटियाले भूरे पीले अथवा हरे पीले रंग की छिपकली है जिस पर गहरे सलेटी या भूरे सलेटी धब्बे होते हैं। पूंछ गोल और हंटर जैसी होती है जिस पर भूरे रंग की आड़ी पट्टियां होती हैं।

रेगिस्तानी गोह बिलों में रहती है और टिड्डी, टिड्डे, झींगुर आदि कीड़े-मकोड़े और छोटे रीढ़युक्त जीवों को खाती है। इस जाति की भी खाल के कारण अत्यधिक हत्या की गयी है जिससे इसकी आबादी बहुत कम हो गयी है।

सांप

सभी सरीसृपों में मनुष्य सांप से ही सबसे अधिक डरता है। कई मनुष्य सांपों को चिपचिपा, घिनौना और खतरनाक जीव समझते हैं। हालांकि सांप चिपचिपे

नहीं होते, न ही वे घिनौने होते हैं। कई सांप अपने चमकीले रंग, धारियों तथा डिजाइनों और पूंछ की ओर धीरे-धीरे पतले होते शरीर के कारण अत्यधिक सुंदर होते हैं। सांपों को देखकर हम या तो मंत्रमुग्ध हो जाते हैं या भयभीत होते हैं अथवा दोनों ही प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।

सांपों की लगभग 3000 जातियां हैं। इनमें से एक तिहाई से कम में विप ग्रंथियां होती हैं जिनमें से बहुत कम मनुष्य के लिए खतरनाक हैं। ये भी साधारणतया मनुष्य से कतराते हैं और खतरे का आभास होने पर ही आक्रमण करते या काटते हैं। इसलिए अधिकांश सांप मनुष्य के लिए हानिकारक नहीं हैं। सांप के आहार में कीट, चूहे, खरगोश, पक्षी, छिपकलियां सम्मिलित हैं। कुछ सांप बड़े स्तनधारी जीव भी खा लेते हैं। जो चूहे अनाज और वनस्पति को नष्ट करते हैं उन्हें खाकर सांप मनुष्य की मूल्यवान सेवा करते हैं।

चूंकि सांप चुस्त परभक्षी या शिकारी हैं, उन्हें तीव्र संवेदन शक्ति की आवश्यकता होती है। सांप भूमि पर सरकते अथवा रेंगते हैं क्योंकि उनके पैर नहीं होते। बिलों में रहने वाले सांपों को छोड़कर अधिकतर सांपों की दृष्टि अत्यंत तीव्र होती है। उनकी आंखों की पलकें नहीं होती हैं और आंखें पारदर्शी खाल से ढंकी रहती हैं। जो सांप दिन में शिकार करते हैं उनकी आंखों की पुतली गोल होती है और जो रात्रि में विचरण करते हैं उनकी आंखों की पुतली बिल्ली के समान लंबी अंडाकार होती है। सूंघने की शक्ति अत्यधिक विकसित होती है। इसी शक्ति द्वारा कोई सांप अपने शिकार का पीछा करता है और अपनी जाति के अन्य प्राणियों को पहचानता है। इसकी दुशाखी जीभ स्पर्श और गंध को पहचानने के लिए एक नाजुक उपकरण का कार्य करती है। सांपों के न तो बाहरी कान होते हैं न कान की झिल्ली होती है परंतु ये भूमि के कंपन को अनुभव कर लेते हैं। उदाहरण के लिए सपेरे का कोबरा बीन की ध्वनि नहीं सुनता पर बीन की गति पर झूमता है न कि उसकी ध्वनि पर। सांप के जबड़े अत्यंत लचीले होते हैं और काफी चौड़े खुल सकते हैं। दांत मजबूत पकड़ के लिए पीछे की ओर मुड़े होते हैं तथा शिकार को बच निकलने से रोकने में सहायक होते हैं। सांप अपना भोजन पूरा निगल लेता है, चाहे वह सूअर हो अथवा हिरण।

भारत में सांपों की 200 से भी अधिक किस्में हैं और संसार में 2500 से अधिक प्रकार के सर्प पाये जाते हैं। भारत में केवल चार प्रकार के सामान्य विषैले सर्प हैं—करैत (क्रेट), नाग (कोबरा), दुबोइया (रसैल वाइपर) और फुरसा (सॉ स्केल्ड वाइपर)। इन्हें पहचानने की शिक्षा अनिवार्य है। भारत में करैत सबसे विषैला सर्प माना जाता है। संसार के सभी सांपों में आस्ट्रेलियन टाइगर सांप

सबसे अधिक विषैला है। केवल एक ही जाति के नर और मादा सांप समागम करते हैं। कुछ, जैसे नाग और करैत अंडे देते हैं। अन्य सांप जैसे रेगिस्तानी अजगर, वाइन सांप और वाइपर बच्चों को जन्म देते हैं। सांप साधारणतया 10 से 20 वर्ष तक लेकिन कभी-कभी 30 वर्ष से अधिक भी जीवित रहते हैं।

भारत में एक आम अंधविश्वास है कि सांप बदला लेता है, अर्थात् यदि आप एक सांप को मार देते हैं तो उसका साथी आकर आपको काट लेगा। यह सत्य नहीं है। बदले की भावना शायद केवल मनुष्य तक ही सीमित है। एक और मान्यता के विपरीत कोबरा के सिर में कोई मणि नहीं होती। मद्रास के इरुला सर्प पकड़ने वालों के पास इस अंधविश्वास का यह उत्तर है कि यदि सांपों में मणि पायी जाती तो इरुला महाराजा होते न कि गरीब सांप पकड़ने वाले।

प्राकृतिक आवास के विनाश, अज्ञानता और किसी भी सांप को देखते ही उसकी हत्या करने की मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति तथा खाल के व्यापार के कारण सांपों की अनेक जातियां दुर्लभ व संकटग्रस्त हो गयी है। इनमें से कुछ संकटग्रस्त जातियों का विवरण नीचे दिया गया है।

भारतीय चट्टानी अजगर

पाइथन मोलूरस (लिनेयस)

भारतीय अजगर एक सामान्य सांप है जो संपूर्ण भारत के झाड़ीदार जंगलों, गरानों (मैंग्रोव) तथा घने वनों में पाया जाता है। यह एक बड़ा और भारी सांप है जिसकी लंबाई 7 मी. तक होती है। इसके शरीर का सामान्य रंग, पीठ पर एक गहरे किनारों वाला सम चतुर्भुजाकार धब्बों के जाल वाला, गहरे भूरे रंग का होता है। मस्तक पर भाले के आकार का चिह्न इसे अन्य कई सांपों से अलग पहचान देता है। यह अच्छा तैराक होने के साथ-साथ पेड़ों पर चढ़ने में भी कुशल है। पाइथनिडी कुल के सांप अजगर से समानता रखते हैं परंतु उनकी खोपड़ी में आंख के ऊपर एक अतिरिक्त हड्डी होती है। पाइथन परिवार के अधिकतर सदस्य रात्रि में विचरण करना पसंद करते हैं। ये साधारणतया जल के आसपास पाये जाते हैं।

चट्टानी अजगर स्तनधारियों, पक्षियों, सरीसृपों और मेंढ़कों को खाता है व अपने शिकार को निगल लेता है। वैसे यह एक विषहीन सर्प है। इसकी खाल के अवैध व्यापार के कारण इस जाति की आबादी अत्यंत कम हो गयी है, इसलिए यह भारतीय वन्य जीवन (सुरक्षा) अधिनियम के अंतर्गत सुरक्षित है।

शाही अजगर

पाइथन रेटिक्यूलेटस (स्नाइडर)

शाही अजगर भारतीय सांपों में सबसे बड़ा है जिसकी लंबाई 10 मी. तक पहुंच जाती है। यह चट्टानी अजगर के समान ही दिखायी देता है, केवल इसके शरीर का रंग पीठ पर काले और पीले किनारों वाले गोल या समचतुर्भुजाकार धब्बों की शृंखला सहित पीला भूरा और काले का मिश्रण होता है। यह मुर्गी, बतख, बिल्ली, कुत्ता, सूअर आदि खाता है तथा विषहीन सांप है।

यह अजगर मुख्यतः उत्तरपूर्वी भारत तथा निकोबार द्वीप समूह में पाया जाता है। खाल के व्यापार के कारण शाही अजगर एक संकटग्रस्त जाति हो गया है।

भारत का अंडे खाने वाला सांप

इलेकिस्टोडोन वेस्टरमानी राइनहार्ट

भारत का अंडे खाने वाला सांप एक दुर्लभ जाति है। इसका यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि इसका नियमित आहार पक्षियों और सरीसृपों के अंडे हैं। यह बिल्ली-सांप जैसा दिखता है और इसका शरीर लंबे आकार का होता है। इसका मस्तक शेष शरीर से अलग नहीं दिखायी देता। इसकी सामान्य रंगत काली है जिसमें रोसट्रल क्षेत्र से गर्दन तक और फिर आंखों के ऊपर पीली धारियां होती हैं। कुछ काली धारियां आंखों के कोनों से गर्दन के क्षेत्र तक जाती हुई भी दिखती हैं।

इस सांप का मुंह विशेष रूप से अंडे खाने के अनुकूल है। अकोर्डियन की तह जैसी मुंह की किनारी और लचीला गला इस सांप को इसके शरीर की गोलाई से तीन या चार गुना बड़े अंडों को निगलने में सहायता प्रदान करता है। भोजन नली में कांटेदार उभार होते हैं जो सांप की गर्दन की हड्डियों के परिवर्तित रूप हैं। जैसे ही अंडा भोजन नली में जाता है, इन उभारों द्वारा कटकर खुल जाता है। सांप अपने गले की मांसपेशियों को दबाता है और अंडे के तत्व अंदर चले जाते हैं।

उभयचर

'एम्फीबियन' यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'दोहरा जीवन'। एम्फीबिया वर्ग के सदस्य जल और थल दोनों में रहने के योग्य अर्थात् 'उभयचर' हैं। अधिकांश में बच्चे या लार्वे पूर्णतया जल में रहते हैं और वयस्क कमोबेश थलीय

होते हैं। ये प्राणी 35 करोड़ वर्ष पूर्व क्रोसोप्टेरिजियन नामक आदिम मछलियों से विकसित हुए। आजकल उभयचर प्राणियों के तीन गण हैं। ये हैं : सपुच्छा (कौडेटा या यूरोडेला)—न्यूट्स और सेलामेंडर; सेलियेन्शिया या एनुरा—मेंढ़क और टोड; अपादा (जिमनोफोनिया)—अंधकृमि।

उभयचर प्राणियों की खाल नम होती है और सूर्य की गर्मी अधिक समय तक नहीं सह सकती। ये प्राणी अपने फेफड़ों के साथ-साथ अपनी खाल से भी श्वास ले सकते हैं। सरीसृपों की तुलना में उभयचर प्राणी अपने अंडे पानी में देते हैं।

मेंढ़क और टोड साधारणतया बड़ी संख्या में अंडे देते हैं, परंतु इनमें से केवल कुछ ही प्रतिशत जीवित रहते हैं। अधिकतर मेंढ़कों में अंडे देने और निषेचन की प्रक्रिया की एक निश्चित विधि है। जब अंडे पानी में छोड़े जाते हैं, नर मादा की गर्दन पकड़ लेता है और अंडों का निषेचन कर देता है। प्रजनन ऋतु के समय कई प्रकार के नर मेंढ़कों के पैरों के अंगूठों पर कांटेदार गद्दियां विकसित हो जाती हैं। इनसे चिपचिपी मादा को पकड़ने में नर को सहायता मिलती है।

न्यूट्स की पूंछ जीवन भर रहती है, इसलिए इन्हें यूरोडेला कहते हैं जिसका अर्थ है—'स्पष्ट पूंछ वाले जीव'। ये छिपकली की तरह दिखायी देते हैं परंतु सेलामेंडर को नम ग्रंथिमय त्वचा के कारण छिपकली की शुष्क तथा शल्की खाल से अलग पहचाना जा सकता है। ये मेंढ़कों की भांति समागम के लिए आवाज नहीं लगाते। कुछ जातियों के प्राणी हल्की सी आवाज करते हैं पर अधिकतर मौन रहते हैं। इनकी श्रवण शक्ति भी कम विकसित है। सेलामेंडर के बाहरी कान नहीं होते। अनेक न्यूट्स में प्रणय निवेदन का अत्यंत विकसित व्यवहार दिखायी देता है।

कुछ आदिम जातियों को छोड़कर जिनमें मेंढ़क की तरह बाहरी निषेचन होता है, न्यूट्स में शरीर के भीतर निषेचन होता है। परंतु यह विकसित प्राणियों जैसे सीधे तरीके से नहीं किया जाता। नर मादा से प्रणय निवेदन करता है। तत्पश्चात् यह एक चिपचिपी थैली में शुक्राणु निकालता है। इसे स्पर्मेटोफोर कहते हैं। मादा अपने अवस्कर (क्लोएका) के होठों से स्पर्मेटोफोर को उठा लेती है। यह वह कक्ष है जिससे व्यर्थ पदार्थ तथा अंडे शरीर से निकलने से पहले गुजरते हैं। शुक्राणु अंडे देने के समय तक क्लोएका में एकत्रित रहते हैं।

तीनों एम्फीबियन समूहों में टोड की संख्या सबसे अधिक है। इनकी लगभग 2000 जातियां ज्ञात हैं। इस गण के एनुरा नाम का अर्थ 'बिना पूंछ का' है जो उभयचर प्राणियों के एक विशेष लक्षण का उल्लेख करता है। वयस्कों के शरीर

छोटे होते हैं। पीछे के लंबे पैर उछलने के अनुकूल होते हैं।

टोड बुफो वंश का प्राणी है। इसके पैर छोटे होते हैं और उनमें मेंढ़कों की तरह उछलने की विशेष योग्यता नहीं होती। साधारणतया ये एक के बाद एक छोटी-छोटी छलांगों द्वारा आगे बढ़ते हैं। जब टोड को कोई कीट या कृमि मिलता है तो यह उसका बड़ी सावधानी से पीछा करता है। फिर यह अपनी लंबी और चिपचिपी जीभ बाहर निकालता है—जिसकी लंबाई 5 से 7 सें. मी. तक होती है—और शिकार को मुंह के अंदर ले आता है।

टोड का अधिकांश जीवन जमीन पर व्यतीत होता है। केवल प्रजनन ऋतु में यह प्राणी जल में वापस जाता है। टोड की खाल पर मस्से जैसी बनावटें वास्तव में ग्रंथियां होती हैं। मनुष्य की चमड़ी पर उत्पन्न होने वाले मस्सों से ये केवल ऊपरी तौर पर ही मिलते-जुलते हैं। यह मान्यता कि टोड के संपर्क से मनुष्य के मस्से बन सकते हैं, सही नहीं है। प्राकृतिक आवास के विनाश, कृषि कार्यों और मनुष्य के भोजन के लिए मेंढ़क की टांगों के निर्यात आदि से भारत में उभयचर प्राणियों की आबादी कम हुई है। निम्न जातियां दुर्लभ और संकटग्रस्त मानी गयी हैं।

हिमालयी न्यूट

टाइलोटोट्रिटन वेरुकोसस एंडरसन

हिमालयी न्यूट एक गहरा भूरा सेलामेंडर है जो दार्जिलिंग, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश और मणिपुर में पाया जाता है। इसका शरीर लंबा और नलिकाकार और सिर दबा हुआ होता है। दो जोड़े पैर तथा लंबाई में चपटी एक पूंछ होती है। रीढ़ की उभरी हुई रेखा के दोनों ओर गांठ की तरह छिद्रयुक्त ग्रंथियों की दो कतारें होती हैं।

भारत में पाया जाने वाला यही एकमात्र सेलामेंडर है। यह जलीय वनस्पति, कीटों के लार्वे, टेडपोल तथा केंचुए खाता है।

मालाबार वृक्षाश्रयी टोड

नेक्टोफरीन ट्यूबरक्यूलोसा (गुंथर)

केरल के मालाबार क्षेत्र में पाया जाने वाला यह एक छोटा टोड है जिसका शरीर काला व नली के आकार का होता है तथा उंगलियां जालयुक्त होती हैं। यह अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों और जल स्थलों के पास झाड़ियों तथा छोटे पेड़ों में

पाया जाता है। इस जाति के स्वभाव और प्राकृतिक आवासों का अभी ठीक से अध्ययन नहीं हुआ है।

गारो पहाड़ियों का वृक्षाश्रयी टोड
नेक्टोफरीन केंपी बोलेंगर

टोड की यह जाति मेघालय की गारो पहाड़ियों में पायी जाती है। यह जालयुक्त पंजों तथा उंगलियों वाला छोटा टोड है। उंगलियों के सिरे गोल होते हैं और कर्णपट छिपा हुआ होता है। इस जाति के विषय में भी अधिक ज्ञान नहीं है।

रीढ़विहीन प्राणी

रीढ़विहीन प्राणी जैसे कृमि, प्रवाल (कोरल), सी एनिमोन, कीट, मोलस्क, सितारा मछली आदि जीवित प्राणियों का एक विशाल वर्ग है। पृथ्वी पर रहने योग्य प्रत्येक भाग में पाये जाने वाले ये प्राणी जैव विविधता का एक आवश्यक और अभिन्न अंग हैं। विकसित प्राणी इनके बिना जीवित नहीं रह सकते क्योंकि ये उनको जीवित रखने वाली भोजन शृंखला का भाग है। अतः, जहां तक संरक्षण का संबंध है, रीढ़विहीन प्राणियों पर उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए जितना रीढ़युक्त प्राणियों पर दिया जाता है। संरक्षकों ने सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारियों पर अधिक ध्यान दिया है और प्राकृतिक आवास के परिवर्तन और बिगड़ते हुए वातावरण के उन प्रभावों को नजरअंदाज किया है जो निम्नकोटि के जीवों को प्रभावित करते हैं। परिणामस्वरूप कुछ रीढ़विहीन जातियों के खोजे जाने से पहले ही विलुप्त होने का गंभीर खतरा है। इनमें से कई प्राणियों की स्थिति की पर्याप्त जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं है। रीढ़विहीन प्राणियों के विलुप्त या संकटग्रस्त होने के कई कारण हैं। वनोन्मूलन के कारण प्राकृतिक आवास का विनाश, एक ही जाति के पौधों वाले वन तथा कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग आदि कुछ ऐसे ही कारण हैं। बार-बार लगातार प्राणिविज्ञानियों और कालेज के विद्यार्थियों द्वारा नमूने एकत्रित करने से समुद्र तटीय और बेलांचली प्राणी संपदा का उन्मूलन तथा विनाश हो गया है, उदाहरण के लिये तमिलनाडु में क्रुसाडी द्वीप समूह तथा गुजरात में ओखा। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए सीप, प्रवाल (कोरल) आदि से सजावट की वस्तुएं बनाने और सीमेंट के उत्पादन में प्रवाल के उपयोग ने इन जातियों के जीवन को गंभीर संकट में डाल दिया है।

दुर्लभ तथा संकटग्रस्त रीढ़विहीन प्राणियों में केकड़ा वर्ग और कीटों की बहुत-सी जातियां हैं। डाकू केकड़ा (रौबर क्रैब) अथवा नारियल केकड़ा (कोकोनट क्रैब या बिरगुस लेट्रो) जो हिंद महासागर और प्रशांत महासागर के द्वीपों में मिलता है, जमीन के केकड़ों में सबसे ज्यादा जाना माना केकड़ा है। यह दक्षिणी सेंटीनेल द्वीप और ग्रेट निकोबार द्वीप में दिखायी देता है। यह बड़ा प्राणी प्रायः एक तिहाई मीटर या उससे अधिक लंबा होता है। यह नारियल के पेड़ के नीचे बिल बनाकर रहता है और उस स्थान को नारियल के छिलकों के रेशों से ढंक लेता है। इसके पिंसर बहुत मजबूत और भारी होते हैं। यह बड़ी सावधानी से नारियल के रेशे उतार देता है और अपने मजबूत पंजों से धैर्यपूर्वक उसे ठोकता रहता है जब तक उसका खोल टूट नहीं जाता। तब यह उसका गूदा निकाल लेता है। इस केकड़े का इसके मांस के लिए अत्यधिक उपयोग हुआ है, अतः यह संकटग्रस्त हो गया है।

कीट

प्राणी जगत में कीटों का समूह सबसे बड़ा है। इनकी दस लाख से भी अधिक जातियां ज्ञात हैं और अनेक जातियों की खोज अभी जारी है। इनका अंग्रेजी नाम 'इनसेक्ट' लैटिन शब्द इन्सेक्टम से बना है जिसका अर्थ 'कटा हुआ' है, क्योंकि कीट का शरीर तीन विशेष भागों—सिर, वक्ष-स्थल और उदर में कटा या विभाजित होता है।

कीटों का अस्तित्व कम से कम 35 करोड़ वर्षों से है। मनमोहक रंग, बनावट तथा अनेक विशेषताओं सहित इनका विकास कई प्रकार के अद्भुत रूपों में हुआ है तथा ये सभी प्रकार के वातावरण में रहने के अत्यधिक अनुकूल हैं। कुछ कीट गर्म स्रोतों और गर्म रेगिस्तानों में रह सकते हैं जिनका दिन का तापमान 70° से. होता है। अन्य कीट अत्यधिक सर्दी में रह सकते हैं और तीव्र विष भी सहन कर सकते हैं। इनकी प्रचुरता और संपूर्ण विश्व में विभिन्न वातावरणों में उपस्थिति को ध्यान में रखते हुए कीट प्राणी जगत के सर्वाधिक सफल समूहों में से एक माने जा सकते हैं।

भारत में विविध प्रकार के कीटों की 50,000 से भी अधिक जातियां पायी जाती हैं। यद्यपि कीट प्रतिकूल वातावरण में रह सकते हैं, परंतु प्राकृतिक आवास के विनाश और प्रदूषण, विशेष तौर पर कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से इनके लिए संकट पैदा हो सकता है। इस बारे में अधिक जानकारी नहीं है फिर भी

कुछ जातियां संकटग्रस्त मानी गयी हैं और वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम की सूची में रख दी गयी हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं।

लेपिडोप्टेरा

लेपिडोप्टेरा गण में तितलियां और पतंगे आते हैं जिनमें कई अत्यंत रंगबिरंगे और मनमोहक कीट हैं। कई तितलियों के पंखों के चमकीले रंग पंखों पर पाये जाने वाले असंख्य शल्कों में निहित रंग द्रव्य की उपस्थिति के कारण हैं। वास्तव में 'लेपिडोप्टेरा' नाम यूनानी भाषा के दो शब्दों से बना है–'लेपिस' जिस का अर्थ 'शल्क' है और 'प्टेरा' जिसका अर्थ 'पंख' है। सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण करने पर शल्क छत पर टाइलों के समान एक दूसरे पर सजाये हुए दिखायी देते हैं। तितली के पंखों को पकड़ने पर शल्क आसानी से धूल की तरह उंगलियों के सिरों पर आ जाते हैं।

भारत में कई लेपिडोप्टेरा जातियां प्राकृतिक आवास के विनाश तथा कीटनाशकों के कारण प्रदूषण से दुर्लभ तथा संकटग्रस्त हो गयी हैं। लेपिडोप्टेरा की संरक्षित जातियों में हैं–बैंडेड डफर (डिस्कोफोरा डियो डियो), ब्लू पोजी (बिडुऐंडा मेलिसा सायना), पिकॉक हेयरस्ट्रीक (थेल्का पावो), एम्परर तितली की अनेक जातियां (एपाटुरा उलुपि उलुपि, डेलिपा मोर्गियाना, यूलेसेयूरा मेनिपुरेन्सिस आदि), मालाबार बैंडेड स्वेलोटेल (पेपिलियो लायोमेडॉन), सामान्य क्लबटेल (पोलिडोरस कूसाम्बिलिएंगा), पत्तागोभी की तितली (पेइरिस क्रुएपेरी देवता), पर्पल बुशब्राउन (माइकेलेसिस ओर्सीस नाटिलस) तथा अन्य जातियां।

ओडोनेटा

ओडोनेटा गण में ड्रैगनफ्लाई (चिउरा) और डैमसलफ्लाई सम्मिलित हैं। बड़े संयुक्त नेत्र युक्त बड़ा सिर, काटने वाले मुखांग, पारदर्शी और जालीदार पंख तथा पतला शरीर इन पर-भक्षी कीटों की विशेषता है। लार्वे जलीय होते हैं। ड्रैगनफ्लाई के कई जीवाश्म रूप बहुत बड़े थे।

भारतीय ओडोनेटा की संकटग्रस्त जातियों में दार्जिलिंग के आसपास सीमित क्षेत्रों में पायी जाने वाली ग्रेट हिमालयन ड्रैगनफ्लाई या टिलीयार्ड ड्रैगनफ्लाई (इप्लियोफ्टेबिया लेडलोवी) हैं।

कोलियोप्टेरा

कीटों के कोलियोप्टेरा गण में बीटल आते हैं। बहुत से लोगों के लिए बीटल एक काला, तेजी से भागने वाला छोटा कीट है जो घृणा और शायद भय उत्पन्न करता है। कीट का नाम ही यह दर्शाता है, क्योंकि 'बीटल' एंग्लो-सेक्सन शब्द बिटोल से बना है जिसका अर्थ 'काटने वाला जीव' है। बीटल कवचधारी कीट के समान है। कुछ दानव जैसे लगते हैं जबकि अन्य चमकीले रंग के तथा सुंदर होते हैं।

कुछ ब्रीटल ऐसे होते हैं जिन्हें मनुष्य देखना पसंद करते हैं, उदाहरण के लिए लेडीबग या लेडीबीटल और जुगनू। स्केरब बीटल (स्काराबेअस सेकर) प्राचीन मिस्र निवासियों द्वारा शाश्वत जीवन के चिह्न के रूप में पूजा जाता था।

कुछ जातियां अत्यंत उपयोगी हैं क्योंकि वे उन कीटों का शिकार करती हैं जिन्हें हम विनाशकारी कीट मानते हैं। अन्य बीटल सफाई कर्मचारी होते हैं जो छोटे मरे हुए प्राणियों को गाड़ते हैं, कचरे को साफ करके पृथ्वी को अधिक आकर्षक बनाते हैं। परंतु कई हजार जातियां विनाशक कीटों की हैं जो पेड़, फसल, तैयार खाद्य सामग्री, कपड़े और फर्नीचर को नष्ट करती हैं। इनमें से कुछ परजीवी हैं जो मनुष्यों पर आश्रित हैं। कुछ जातियां चूहों, अन्य प्राणियों तथा मनुष्यों में टेपवर्म पहुंचाती हैं।

भारत में बीटल की कुछ दुर्लभ जातियां हैं जो केराबिडी कुल से संबंध रखती हैं। इनमें से कुछ एगोनोट्रेकस एन्ड्रेवेसी, अमारा इलेगेनफुला, अमारा बुसेई, ब्रोसकोसोमा ग्रेसिले, चेनियस केनारी, केलेथस अमारोयडीज आदि हैं।

कई अन्य निम्नकोटि के जीवों में संरक्षण स्थिति के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है, जिससे कि संकटग्रस्त रीढ़विहीन जातियों का व्यापक विवरण दिया जा सके।

संरक्षण के प्रयास

यह एक विरोधाभास ही है कि भारत जो अशोक, गौतम और महात्मा गांधी का देश है, जिसकी सब जीवों के लिए स्नेह, आदर एवं श्रद्धा की प्राचीन परंपरा है, वहां हमारे अनोखे प्राणियों में से अनेक का जीवन संकटग्रस्त है। क्या हमारी सभ्यता की जड़ें जो संरक्षण के प्रति एक गहन श्रद्धा से जुड़ी हैं और हमारे पूर्वजों के दैनिक जीवन में परिलक्षित होती थीं तथा हमारी मान्यताओं, लोक गाथाओं, धर्म, कला और संस्कृति में प्रतिष्ठित हैं, वे नष्ट हो गयी हैं ? तीसरी सदी ई. पू. में सम्राट अशोक की राज घोषणा जिसमें प्रथम संरक्षण कानूनों का वर्णन है, वन्य जीवन के प्रति श्रद्धा और संरक्षण की नीति जो भारतीय चित्रकला, शिल्पकला एवं वास्तुकला की अति उत्तम कृतियों में प्रदर्शित है, पंचतंत्र और हितोपदेश जैसे प्राचीन साहित्य में पशुओं की काल्पनिक कथाओं का प्रयोग कई शताब्दियों पूर्व की तुलना में आज अधिक प्रासंगिक होना चाहिए।

हमारे वन्य जीवन में आज जो कमी दिखायी देती है, उसका कारण मनुष्य की बढ़ती हुई आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र का अत्यधिक शोषण है। प्राकृतिक आवास का विनाश वन्य जीवन के लिए सबसे गंभीर संकट उत्पन्न करता है। यदि प्राकृतिक आवास का विनाश अनजाने में हुआ तो दूसरा विनाशक कारण–शिकार और वन्य जीवन का व्यापारिक शोषण–मनुष्य की आवश्यता के बजाय उसका लोभ ही दर्शाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में वन्य जीवन के संरक्षण को अधिक महत्व दिया

गया है जैसा कि सरकार द्वारा उठाये गये कई कदमों से विदित होता है, जैसे प्राणियों के लिए राष्ट्रीय उद्यानों और आश्रय स्थलों का निर्माण, कानून बनाना, संकटग्रस्त प्राणियों के संरक्षण के लिए विशेष योजनाएं, संस्थानों द्वारा सहायता तथा संरक्षण शिक्षा।

राष्ट्रीय उद्यान और आश्रय स्थल

आज भारत में देश के विभिन्न भागों में फैले हुए 69 राष्ट्रीय उद्यान और 392 आश्रय स्थल हैं जो देश के संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 4 प्रतिशत हैं। कई वर्षों की सुरक्षा एवं वैज्ञानिक प्रबंधन के कारण बहुत-सी ऐसी जातियां जो विलुप्त होने के कगार पर पहुंच चुकी थीं, बचा ली गयीं। न केवल जातियां ही बचायी गयीं बल्कि उनके आवास और संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को भी स्वस्थ बना दिया गया।

राष्ट्रीय उद्यानों और वन्य जीवन आश्रय स्थलों में देश के प्राणी जगत की कई बहुमूल्य जातियां पायी जाती हैं। कश्मीर में डाचीगांव राष्ट्रीय उद्यान हांगुल के लिए अंतिम आश्रय स्थल है। हिरण की एक और संकटग्रस्त जाति 'कस्तूरी मृग' इस उद्यान में मिलती है। हिमालय की तराई में कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान है जिसका नाम जिम कार्बेट नामक प्रसिद्ध शिकारी के नाम पर रखा गया है जो बाद में वन्य प्राणी संरक्षक बन गया था। 1936 में स्थापित यह देश का सबसे पुराना राष्ट्रीय उद्यान है, जिसमें बाघ, हाथी, तेंदुआ और हिरण की कई जातियां सुरक्षित हैं। उसी क्षेत्र में दुधवा राष्ट्रीय उद्यान भी है जो अपने बारहसिंगा, बाघ और काले हिरण के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश का कान्हा राष्ट्रीय उद्यान बाघ और बारहसिंगा के लिए प्रसिद्ध है।

भारत के दक्षिणी राज्यों के कई उद्यान पेड़-पौधों और प्राणियों के प्राकृतिक रक्षा स्थल हैं। कर्नाटक राज्य के बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान के पास ही तमिलनाडु का मधुमलई अभयारण्य, उत्तर में नागरहोल उद्यान और केरल के पश्चिम में वाइनाड अभयारण्य है। इससे हाथियों के लिए एक सुरक्षित मार्ग और सबसे बड़ा प्राकृतिक आवास क्षेत्र (1,000 वर्ग कि.मी. से अधिक) मिल जाता है। हाथियों के अतिरिक्त अन्य प्राणी जिनमें जंगली सूअर, तेंदुआ, पिसूरी, चीतल, रीछ और छोटी बिल्लियों जैसे जंगल बिल्ली, छोटा भारतीय मुश्क बिलाव (सीवेट) और टौडी बिल्ली सम्मिलित हैं, उपरोक्त सुरक्षा स्थलों में मिल जाते हैं। केरल में पेरियार वन्य जीवन अभयारण्य में हाथी, बाघ तथा अन्य प्राणी बहुतायत से पाये जाते हैं।

भरतपुर में केवलादेव घाना राष्ट्रीय उद्यान एशिया में सुप्रसिद्ध जल पक्षी आश्रय स्थल है, जो कई सौ प्रकार के बाहर से आने वाले तथा देशी दोनों तरह के पक्षियों के लिए प्रसिद्ध है। अक्तूबर से दिसंबर तक प्रत्येक वर्ष स्थानीय जल पक्षी जांघिल (पेन्टेड स्टोर्क), घोंघिल (ओपन बिल), दाबिल (स्पून बिल), सफेद आइबिस, डार्टर, कारमोरेंट, बगुला, और इगरेट के घोंसले छिछले जल में फैले हुए बबूल के वृक्षों में मिलते हैं। दिसंबर में शीतकालीन अतिथि आते हैं जिनमें दुर्लभ साइबेरियाई सारस भी हैं जो आज संपूर्ण विश्व में लगभग 400 ही जीवित हैं। उद्यान का एक दर्शनीय निवासी सारस है जो अपने मनमोहक प्रणय निवेदन नृत्य के लिए प्रसिद्ध है।

राजस्थान के थार रेगिस्तान में 3,000 वर्ग कि. मी. से भी अधिक क्षेत्र में फैला हुआ रेगिस्तानी राष्ट्रीय उद्यान, रेगिस्तानी भेड़िये, रेगिस्तानी बिल्ली और रेगिस्तानी लोमड़ी के अतिरिक्त अत्यधिक संकटग्रस्त हुकना या सोहन चिड़िया (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड) के लिए आश्रय स्थल है। गुजरात में सिंह का आश्रय स्थल गीर अभयारण्य न केवल भारत बल्कि संपूर्ण एशिया में सिंहों के लिए एक मात्र स्वर्ग है। गीर राष्ट्रीय उद्यान, सिंह के अतिरिक्त तेंदुआ, चीतल, सांभर, नील गाय, चौसिंगे, चिंकारा और लकड़बग्घे का भी घर है।

असम में ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान गैंडे, जंगली भैंस और वन्य जीवों की अन्य जातियों के लिए आश्रय स्थल प्रदान करता है। भूटान तक फैले वनों के साथ असम का मनास अभयारण्य भारत के सर्वाधिक संकटग्रस्त स्तनधारी प्राणियों और पक्षियों की जातियों को सबसे बड़ी संख्या में आश्रय प्रदान कर रहा है। हाथी, गैंडा, जंगली भैंस, गौर, बारहसिंगा, सानो बनैल, पिग्मी होग, हिस्पिड खरहा, हुलक गिब्बन, सुनहरा लंगूर, विशाल गिलहरी, बाघ, तेंदुआ, लमचित्ता, बिंटुरोंग, रीछ, घड़ियाल, अजगर तथा धनेश यहां पाये जाते हैं। अरुणाचल प्रदेश में नमदाफा अभयारण्य भारतीय बाघों के आश्रय स्थल की पूर्वी सीमा है। गौर, जंगली भैंस, घुरड़ (गोराल) और तेकिन भी यहां पाये जाते हैं।

गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा में बंगाल की खाड़ी के साथ संगम स्थल पर 2,585 वर्ग कि. मी. के क्षेत्र में पश्चिम बंगाल का सुंदरवन राष्ट्रीय उद्यान है। यह विशाल आश्रय स्थल नदीमुख गरान पारिस्थितिक तंत्र का प्रतिनिधित्व करता है। इस क्षेत्र का अनोखा स्तनधारी प्राणी सुंदरवन का बाघ है जो शाही बंगाल बाघ की शानदार जाति का प्राणी है। यह क्षारयुक्त तथा जल-थलीय दोनों प्रकार के जीवन का आदी हो गया है।

जीवमंडल आश्रय स्थल

आदर्श पारिस्थितिक तंत्रों में जो जैविक विविधता मिलती है उसके संरक्षण के लिए जीवमंडल आश्रय स्थलों की स्थापना की परिकल्पना यूनेस्को की 'मनुष्य और जीवमंडल योजना' के अंतर्गत साकार हुई। जीवमंडल आश्रय स्थलों के प्रमुख उद्देश्य हैं :

- पौधों, प्राणियों और सूक्ष्मजीवों की विविधता और अखंडता का संरक्षण करना;
- पारिस्थितिक संरक्षण और वातावरण के अन्य पक्षों पर अनुसंधान को प्रोत्साहन प्रदान करना; और
- शिक्षा, जागृति और प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं प्रदान करना।

भारत में जीवमंडल आश्रय स्थलों की स्थापना के लिए 14 आदर्श पारिस्थितिक तंत्रों का चुनाव किया जा चुका है जिनमें से नीलगिरि, नंदादेवी, नोक्रेक, ग्रेट निकोबार, मनार की खाड़ी, मनास और सुंदरवन—सात की स्थापना की जा चुकी है। नमदाफा, कान्हा, उत्तराखंड, थार रेगिस्तान, काजीरंगा, छोटी कच्छ की खाड़ी और उत्तरी अंडमान में अन्य आश्रय स्थलों की स्थापना करने का प्रस्ताव है।

उपर्युक्त पारिस्थितिक तंत्रों में रहने वाली अनेक दुर्लभ तथा संकटग्रस्त जंतु जातियों को इन जीवमंडल आश्रय स्थलों में सुरक्षा प्राप्त हो सकेगी।

विशेष परियोजनाएं

बाघ परियोजना

देश में बाघों की आबादी तेजी से कम होने के कारण 1970 में भारतीय वन्य प्राणी बोर्ड ने भारत में बाघों की आबादी के संरक्षण हेतु एक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिए विशेष कार्यदल की स्थापना की। परिणामस्वरूप 1 अप्रैल 1973 को निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बाघ परियोजना का सूत्रपात हुआ :

- वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्यात्मक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक मूल्यों के लिए भारत में बाघों की जीवनक्षम आबादी के संरक्षण को सुनिश्चित करना;

- मनुष्य के लाभ, शिक्षा तथा आनंद के लिए जैविक महत्व के क्षेत्रों को एक राष्ट्रीय विरासत के रूप में सदैव के लिए सुरक्षित रखना।

1973-74 में निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित 9 बाघ आश्रय स्थलों की स्थापना हुई :

- मानव शोषण और व्यवधानों के सभी रूपों को समूल हटाना और सुरक्षित क्षेत्र में ऐसी गतिविधियों को युक्तिसंगत बनाना;
- पारिस्थितिक तंत्र को जितना हो सके, स्वाभाविक रूप से कार्य करते रहने देने के उद्देश्य के साथ मनुष्य द्वारा की गयी हानि को ठीक करने के लिए आवास प्रबंध को सीमित करना;
- प्राकृतिक आवास और वन्य प्राणियों के विषय में तथ्यों की खोज तथा पेड़-पौधों तथा प्राणियों में हो रहे परिवर्तनों का आकलन।

आज 13 राज्यों के 28,000 वर्ग कि. मी. से अधिक वन क्षेत्र में फैले हुए 18 बाघ आश्रय स्थल हैं।

बाघ परियोजना वन्य जीवन की रक्षा के लिए देश की वचनबद्धता का प्रतिनिधित्व करती है और आज संरक्षण की एक सफल गाथा के रूप में पहचानी जाती है। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक संचालन समिति बाघ आश्रय स्थलों के प्रबंध का मार्गदर्शन करती है। इस परियोजना ने बाघ के आवास के लिए आवश्यक संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा को सुनिश्चित किया है और कुछ वर्षों में इसकी आबादी दुगनी से अधिक हो गयी है।

गीर सिंह अभयारण्य योजना

एशियाई सिंह, जो कभी भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी और मध्य क्षेत्रों में पाया जाता था, अब गुजरात के गीर वन तक ही सीमित है। इस जाति का यह अंतिम प्राकृतिक आवास बचा है जिसमें लगभग 200 सिंह रह रहे हैं। यह प्राकृतिक आवास घरेलू मवेशियों के अत्यधिक चरने, सिंह के भोजन प्राणियों की जातियों की कमी आदि कारणों से संकटग्रस्त हो गया था। भूख, महामारी तथा मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण एशियाई सिंह का अस्तित्व संकट में पड़ गया था। 1972 में राज्य सरकार ने संरक्षण के लिए उचित मार्गदर्शन के साथ गीर सिंह आश्रय स्थल के प्रबंध की योजना बनायी। इस आवास की सुरक्षा और सुधार के लिए केंद्रीय सरकार ने सहायता प्रदान की।

हिमालयी कस्तूरी मृग परियोजना

कस्तूरी मृग (मोस्कस मोस्किफेरस) जो कभी संपूर्ण हिमालय क्षेत्र में पाया जाता था, सुगंध और दवा बनाने के काम आने वाली कस्तूरी के लिए मनुष्य द्वारा सताया गया। इसके साथ-साथ प्राकृतिक आवास के विनाश के कारण इसकी आबादी बहुत तेजी से कम हो गयी। अतः अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (आई.यू.सी.एन.) के संकटग्रस्त हिरण कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार के सहयोग से एक संरक्षण परियोजना उत्तर प्रदेश के केदारनाथ अभयारण्य में आरंभ की गयी।

मणिपुर थामिन (ब्रो ऐन्टलर हिरण) परियोजना

मणिपुर का थामिन (ब्रो ऐन्टलर हिरण—सेरवस एल्डाई एल्डाई) संसार के अत्यधिक दुर्लभ स्तनधारियों में से एक है जो लोगटक झील के दक्षिण पूर्वी भाग कीबुल लमजोआ में पाया जाता है। 1977 में इसकी संख्या केवल 18 रह गयी थी जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र को 1977 में राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया और इस जाति की सुरक्षा के लिए संरक्षण उपाय आरंभ किये गये।

हांगुल परियोजना

हांगुल हिरण अथवा कश्मीर स्टैग (सेरवस इलेफस हंगलू) एक संकटग्रस्त स्तनधारी प्राणी है जो केवल डाचीगांव आश्रय स्थल, जम्मू एवं कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के छोटे क्षेत्रों तक सीमित रह गया है। प्राकृतिक आवास के विनाश, घरेलू मवेशियों और भेड़ों के अत्यधिक चरने और अवैध शिकार के कारण इसकी संख्या 1970 में 200 से कम रह गयी थी। जम्मू एवं कश्मीर राज्य ने 'आई.यू.सी.एन.' और 'वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर' (डब्लू.डब्लू.एफ.) के आपसी सहयोग से इस प्राणी की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए 1970 में हांगुल परियोजना आरंभ की गयी। इससे उत्साहवर्धक परिणाम मिले और 1980 में इस हिरण की आबादी बढ़कर 340 से अधिक हो गयी थी।

मगर प्रजनन परियोजना

घड़ियाल (गेवियेलिस गेंजेटिक्स), मकर (क्रोकोडाइलस पेलुस्ट्रिस) और खारे पानी का मगर (क्रोकोडाइल्स पोरोसस)—भारत में पायी जाने वाली मगर की ये तीन

जातियां 1970 के दशक के आरंभ में अत्यंत दुर्लभ हो गयी थीं। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम यू.एन.डी.पी. की सहायता से 1975 में ओड़िसा में मगर प्रजनन एवं प्रबंधन की परियोजना आरंभ की। बाद में इस योजना का उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, अंडमान, असम, बिहार और नगालैंड तक विस्तार किया गया। प्रजनन परियोजनाओं और 12 आश्रय स्थलों में उनके प्रबंध के परिणामस्वरूप इन तीनों जातियों की आबादी काफी बढ़ गयी है।

हाथी परियोजना

देश में हाथियों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए बिल्कुल बाघ परियोजना जैसी एक परियोजना की रूपरेखा बनायी गयी। हाथी परियोजना का उद्देश्य हाथियों के उजड़े और नष्ट हुए प्राकृतिक आवासों को फिर से ठीक करना, उनके आवागमन के मार्गों का निर्माण, मनुष्य के हस्तक्षेप को रोकना और हाथियों के आवागमन तथा उनकी आवादी बढ़ाने के विषय में जानकारी एकत्र करना था।

कानूनी व्यवस्था

भारतीय वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम, 1972

भारतीय वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 एक व्यापक केंद्रीय कानून है जिसके अंतर्गत पक्षी, सरीसृप, उभयचर, कीट इत्यादि वन्य प्राणी और विशेषकर संकटग्रस्त जातियों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है। इसमें राष्ट्रीय उद्यानों और वन्य प्राणी अभयारण्यों की स्थापना; वन्य प्राणियों, प्राणियों के उत्पादों और ट्राफियों के व्यवसाय का उचित नियंत्रण भी सम्मिलित है।

इस अधिनियम के अंतर्गत दुर्लभ और संकटग्रस्त जातियों की पांच सूचियां हैं जिन्हें पूर्ण रूप से सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। साथ ही शिकार की विशेष जातियां भी सूची में दी गयी हैं जिन्हें निश्चित सुरक्षा की आवश्यकता है जिसके लिए विशेष परिस्थितियों में लाइसेंस दिया जा सकता है।

इस अधिनियम की धाराओं में समय-समय पर संशोधन किये गये हैं। एक प्रमुख संशोधन 2 अक्तूबर 1991 में किया गया जिससे वन्य प्राणियों को अधिक सुरक्षा प्रदान की गयी है और कानून का उल्लंघन करने पर सख्त सजा तथा अधिनियम के उल्लंघन की घटनाओं के खिलाफ लोगों को सीधे मुकदमा करने

की इजाजत दी गयी। अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत उन सभी वन्य प्राणियों का शिकार वर्जित है जिनका अधिनियम की सूची 1, 2, 3 और 4 में उल्लेख किया गया है। वन्य जीव उत्पादों के विक्रेताओं, वन्य जीवों को बंदी बनाने और अवैध शिकार करने वालों को कठोर दंड देने के लिए कड़े प्रावधान तथा कार्य प्रणालियां भी हैं।

साइट्स (सी.आई.टी.ई.एस.)

वन्य प्राणियों और पेड़-पौधों की संकटग्रस्त जातियों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उपसंधि (सी.आई.टी.ई.एस.) 1975 से लागू हुई। इसका उद्देश्य वन्य प्राणियों और पेड़-पौधों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को रोकना है। भारत ने इस उपसंधि पर हस्ताक्षर किये हैं। हस्ताक्षरकर्ताओं ने एक मत से स्वीकार किया है :

(1) कि वन्य प्राणी और पेड़-पौधे अपने कई सुंदर और विविध रूपों में पृथ्वी के प्राकृतिक तंत्रों का एक अद्वितीय भाग हैं;

(2) कि वे सौंदर्यात्मक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, मनोरंजन और आर्थिक दृष्टिकोण से वन्य प्राणियों और पेड़-पौधों के बढ़ते हुए मूल्य के प्रति जागरूक हैं;

(3) कि लोग और राष्ट्र अपने वन्य प्राणियों और पेड़-पौधों के सबसे अच्छे रक्षक हैं और होने चाहिए;

(4) कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा अतिशोषण के विरुद्ध वन्य प्राणियों और पेड़-पौधों की कुछ जातियों की सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है;

(5) कि इस उद्देश्य के लिए उचित कदम उठाना अत्यंत आवश्यक है।

साइट्स वन्य जीवन संरक्षण की दिशा में एक बड़ा कदम है क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग प्रदान करता है, जिसके बिना अवैध व्यापार को नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

संरक्षण जागरूकता उत्पन्न करना

यदि वन्य प्राणियों की कुछ और जातियां संकटग्रस्त और विलुप्त हो जायें तो क्या होगा ? यदि भारतीय चीता सदैव के लिए समाप्त हो गया है और एशियाई सिंह विलुप्त होने के कगार पर खड़ा है तो उससे हमें क्या फर्क पड़ता है ? बाघ

की रक्षा के लिए हम क्यों करोड़ों रुपये खर्च करें ? इन 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्नों के उत्तर को जनसाधारण में संरक्षण जागरूकता पैदा करने का आधार बनाना चाहिए। जैविक विविधता का महत्व, प्रकृति में आपसी संबंध, पारिस्थितिक तंत्रों का अनुरक्षण और स्थिरता तथा प्राकृतिक संसार पर मनुष्य के प्रभाव आदि का लोगों को ज्ञान होना चाहिए।

संरक्षण शिक्षा और जागरूकता औपचारिक व अनौपचारिक दोनों स्तरों पर प्राप्त होनी चाहिए। औपचारिक स्तर पर उत्तरदायित्व केवल विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों पर रहता है। विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर पारिस्थितिकी, वन्य जीवन और संरक्षण की पढ़ाई के पाठ्यक्रम का विकास और परिचय होते हुए भी औपचारिक शिक्षा अधिकतर पाठ्य-पुस्तकों और परीक्षाओं तक ही सीमित रह जाती है। इस स्थिति के कारण सभी स्तर के लोग जैसे बच्चे, किशोर, वयस्क, परिवार, शिक्षक, प्रशासक, राजनीतिज्ञ तथा कार्यनीति बनाने वालों में सही जागरूकता और भावना उत्पन्न करने के लिए अनौपचारिक शिक्षा और भी अधिक आवश्यक हो जाती है।

इस संदर्भ में भविष्य के लिए बच्चे और युवक हमारी सबसे बहुमूल्य संपदा और आशा हैं। वातावरण के प्रति सही उनकी प्रवृत्ति तथा उचित जागरूकता और संरक्षण प्रयत्नों में वे किस प्रकार योगदान दे सकते हैं जैसे विषय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह केवल औपचारिक शिक्षा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि इसका उत्तर अनौपचारिक शिक्षा है तो हमें इस उद्देश्य के लिए उचित माध्यम के प्रयोग के तरीके और साधन ढूंढ़ने चाहिए। संचार माध्यम जैसें अखबार, मैगजीन, रेडियो और टेलिविजन, राष्ट्रीय उद्यान और वन्य जीवन संरक्षण स्थल, चिड़ियाघर और प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय आदि जनता में संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

वन्य प्राणी और उनके संरक्षण का ज्ञान एवं जागरूकता उत्पन्न करने की प्रमुख आवश्यकता प्रकृति के प्रति प्रशंसा, श्रद्धा और स्नेह उत्पन्न करना है। अधिकतर लोगों को दैनिक जीवन में दिखायी देने वाले प्राणी और पौधों के नाम तक जानने की स्वाभाविक उत्सुकता नहीं होती। अतः पेड़-पौधों और प्राणियों के लिए उत्सुकता, निरीक्षण की तीव्र इच्छा तथा जिज्ञासु मस्तिष्क का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण है। संरक्षण के लिए चिंता केवल प्रकृति के प्रति प्यार और मनुष्य सहित प्राणियों और पेड़-पौधों की समस्त जातियों की परस्पर निर्भरता के विषय में जागरूकता से ही उत्पन्न हो सकती है।

व्यक्ति की भूमिका

अपने देश में कम होते हुए और संकटग्रस्त प्राणियों के संरक्षण के लिए आप, मैं और हम सब मिलकर क्या कर सकते हैं ? अधिकतर लोगों को इसका आभास नहीं है कि एक व्यक्ति संरक्षण के प्रति कितना योगदान दे सकता है। वन्य जीवन की सुरक्षा के नियम, सरकार और अन्य संस्थाओं द्वारा उठाये गये कदम प्रबुद्ध जनता के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकते। प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति और वन्य जीवन के प्रति व्यक्तिगत नैतिकता विकसित करनी चाहिए, जो वन्य जीवन को नष्ट न करने की वचनबद्धता और विश्वास का मार्ग प्रशस्त कर सके। विशेष रूप पर शिकार को एक खेल न समझना, संकटग्रस्त प्राणियों की खाल और उनके अन्य अंगों से बनी वस्तुओं जैसे फरकोट, बैग, बेल्ट, जूते, हाथी दांत, कछुए का खोल, कस्तूरी, सींग आदि का प्रयोग न करना। जब तक इन वस्तुओं का इनका प्रयोग करने वालों द्वारा बहिष्कार नहीं किया जाता तब तक अविवेकशील मनुष्यों द्वारा वन्य जीवों को चोरी से मारना या अवैध शिकार चलता रहेगा। हम लोगों में से प्रत्येक अपने मित्रों, परिवार तथा समाज में संरक्षण के संदेश को फैलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

हम भाग्यशाली हैं कि हमारे देश में पर्यावरण की रक्षा तथा वन्य जीवों के संरक्षण के लिए दृढ़ सरकारी वचनबद्धता और बड़ी संख्या में वन्य जीवन तथा संरक्षण के विशेषज्ञ, पर्याप्त कानूनी व्यवस्था, संस्थानों द्वारा सहायता तथा संरक्षण प्रयत्नों को प्रभावशाली योगदान प्रदान करने का सुगठित ढांचा भी है। हमारे पास स्वैच्छिक संस्थाएं तथा कार्यकर्ता हैं जो संरक्षण के लिए जनता की राय बनाते हैं। साथ ही, हमारे पास प्राचीन और वर्तमान समय की संरक्षण सफलता कथाओं का एक उत्कृष्ट रिकार्ड भी है। फिर भी हमें अभी बहुत कुछ करना है।

आई.यू.सी.एन. के भूतपूर्व महानिदेशक डेविड ए. मूनरो ने 1979 में उत्तरी अमेरिका के वन्य जीवन एवं प्राकृतिक संसाधनों पर 44वीं गोष्ठी में 'वनों के जीवित संसाधनों के संरक्षण की कूटनीति' नामक एक व्याख्यान में कहा : ''संरक्षण एक बृहत् असफलता के कगार पर खड़ा है। यह एक विरोधाभास है कि इसे सफलता के अवसर मिल रहे हैं जो पहले नहीं मिले थे।'' भविष्य में हमारी सफलता इन अवसरों को ग्रहण करने तथा संरक्षण को जनता का आंदोलन बनाने पर निर्भर करेगी। भारत में इन दो दशकों में वन्य जीवों के संरक्षण के लिए किये गये प्रयत्न भविष्य के लिए यदि कोई संकेत देते हैं तो आशांवित होने की काफी गुंजाइश है।

संदर्भ

आर. एल. डिटमार्स (1989)–*रेपटाइल्स आफ द वर्ल्ड,* फाल्कन, नयी दिल्ली।

ओलिवर एस. ओवेन (1985)–नेचुरल रिसोर्स कनजर्वेशन–*ऐन इकोलाजिकल अपरोच* (चौथा संस्करण), मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क और कोलियर मेकमिलन पब्लिशर्स, लंदन।

इरा एन. गेबरिअलसन (1959)–*वाइल्ड लाइफ कनजर्वेशन,* मैकमिलन कंपनी, लंदन।

ए. ए. डनबार ब्रेंडर (1982)–*वाइल्ड एनिमल्स इन सेंट्रल इंडिया,* नटराज पब्लिशर्स, देहरादून।

एम. जेम्स पीक (1986)–*ए रिव्यू आफ वाइल्ड लाइफ मेनेजमेंट,* प्रेंटिस हाल, एंगलवुड क्लिफ्स, न्यू जरसी।

एस. एच. प्रेटर (1965)–*दी बुक आफ इंडियन एनिमल्स,* बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, बाम्बे।

एस. एस. नेगी (1985)–*हिमालयन वाइल्ड लाइफ–ऐन इंट्रोडक्शन,* बिशन सिंह, महेंद्र पाल सिंह, देहरादून।

ऐंड्रयू गाईड (1981, 1986)–*दी ह्यूमन इम्पेक्ट आन दी नेचुरल एनवायरनमेंट,* बेसिल ब्लैकवेल लिमिटेड, यू. के.।

ऐरिक डफरी (1970)–*कनजर्वेशन आफ नेचर,* कालिन्स पब्लिशर्स, लंदन और मेक्ग्रा हिल, न्यूयार्क।

कैलाश सांखला (1978)–*टाइगर–दी स्टोरी आफ दी इंडियन* टाइगर, रूपा एंड कंपनी, कलकत्ता।

जेम्स ए. कोक्स (1975)–*दी एंडेंजर्ड वंस,* क्राउन पब्लिशर्स इंक, न्यूयार्क।

जे. सी. डेनियल (1983)–*दी बुक आफ इंडियन रेपटाइल्स,* बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, बाम्बे।

टाइम लाइफ बुक्स (1974)–*वेनिशिंग स्पीशीज,* न्यूयार्क।

टी. एस. एन. मूर्ति (1986)–*दी स्नेक बुक आफ इंडिया,* इंटरनेशनल बुक डिस्ट्रिब्यूटर्स, देहरादून।

नटराज पब्लिशर्स : *दी इंडियन वाइल्ड लाइफ (प्रोटेक्शन) एक्ट,* 1972 (1990) देहरादून।

नेशनल जिओग्राफिक (1981)–*बुक आफ मेमल्स, भाग 1 और 2,* नेशनल जिओग्राफिक सोसाइटी, वाशिंगटन डी. सी.।

पाल और ऐनी एहरलिक (1981)–*एक्सटिंक्शन–दी काजेज एंड कांसीक्वेनसिज आफ दी डिसएपियरेंस आफ स्पीशीज,* विक्टर गोलेन्स लिमिटेड, लंदन।

बी. के. टीकादर (1983)—*थ्रेटन्ड एनिमल्स आफ इंडिया,* जुआलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, कलकत्ता।

बी. बी. ओसमाटन और जे. बी. साले (1989)—*वाइल्ड लाइफ आफ देहरादून एंड ऐडजेसेंट हिल्स,* नटराज पब्लिशर्स, देहरादून।

बी. बी. सह्मरिया (1982)—*वाइल्ड लाइफ इन इंडिया, नटराज पब्लिशर्स,* देहरादून।

स्टेनले एच. एंडरसन (1991)—*मेनेजिंग अवर वाइल्ड लाइफ रिसोर्सेज,* प्रेंटिस हाल, एंगलवुड क्लिफ्स, न्यू जरसी।

सर पीटर स्काट (1978)—*सक्सैसेज इन वाइल्ड लाइफ कनजर्वेशन*—बैक फ्राम दी ब्रिंक, हचिंसन, लंदन।

सालिम अली (1979)—*दी बुक आफ इंडियन बर्ड्स,* बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, बाम्बे।